संस्कृत पाठ माला।

बारह पुस्तकोंका मूल्य म. आ. से ३) और वी. पी. से ४) प्रति भाग का मूल्य ।-) पांच आने और डा. व्य. -) एक आणा अलग

सुगम रीतिसे संस्कृत भाषाका अध्ययन करनेकी अपूर्व पद्धति।

इस पद्धतिकी विशेषता यह है -

१ प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाग।

इन भागोंमें संस्कृत के साथ साधारण परिचय करा दिया गया है।

२ चतुर्थ भाग।

इस चतुर्थ भागमें संधि विचार बताया है।

३ पंचम और षष्ठ भाग।

इन दो भागोंमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया गया है।

४ सप्तम से दशम भाग।

इन चार भागोंमें पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधी बताई है।

५ एकादश भाग।

इस भागमें "सर्वनाम" के रूप बताये हैं।

६ द्वादश भाग।

इस भागमें समासों का विचार किया है।

७ तेरहसे अठारहवें भाग तकके ६ भाग

इन छः भागों में क्रियापद विचार की पाठविधि बताई है।

८ उन्नीससे चौबीसवें भागतकके ६ भाग

इन छः भागोंमें वेदके साथ परिचय कराया है।

अर्थात् जो लोग इस पद्धतिसे अध्ययन करेंगे उन को अल्प परिश्रमसे बड़ा लाभ हो सकता है।

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

ॐ

छूत और अछूत।

पूर्वार्ध।

लेखक और प्रकाशक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय मंडल औंध (जि. सातारा

द्वितीय वार.

संवत १९८३, सन १९२७

इस समयका प्रश्न ।

"छूत अछूत का प्रश्न" इस समय बडे भयानक रूपमें हम सब के सामने उपस्थित हुआ है। यदि हम इस प्रश्नका उत्तर योग्य रीतिसे नहीं दे सकेंगे तो भविष्यमें हमारी परिस्थिति अधिक विकट हो जायगी। इस लिये हरएक भारतीय आर्य सज्जनको इस का विचार अवश्य करना चाहिये।

इस प्रश्नके विषयमें प्राचीन ज्ञानियोंने किसप्रकार विचार किया था, आर्यधर्मके प्राचीन ग्रंथोंमें इसका विचार किस ढंगसे हुआ है और अन्य धर्म और अन्य पंथोंके अर्वाचीन चालकोंने किस रीति से इसका विचार किया इस बातके दर्शाने के लिये यह ग्रंथ लिखा गया है हमें विश्वास है कि यह ग्रंथ इस विषयके लिये अत्यंत उपयोगी सिद्ध होगा।

सबसे प्रथम यह ग्रंथ श्रीमान महाराजा साहेब सयाजीराव गायकवाड बडोदा नरेश की महनीय प्रेरणासे मराठीमें लिखा गया था और जिसको उस समय सबसे उत्तम पारितोषिक भी प्राप्त हुआ था। मराठी भाषामें यह कईवार छपचुका है, और गुजराती भाषा में इसका भाषांतर प्रसिद्ध हो चुका है। और उन भाषाओंमें इस ग्रंथ ने विचारोंमें बडा परिवर्तन उत्पन्न किया है। अब यह इसका हिंदी भाषानुवाद प्रसिद्ध होता है और हमें पूर्ण आशा है कि इसभाषाके क्षेत्रमें भी यह वैसाही कृतकार्य होगा।

लेखक,

औंध (जि. सातारा) | श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
१ पौष सं० १९८३ | स्वाध्याय मंडल.

मुद्रक तथा प्रकाशक– श्रीपाद दामोदर सातवळेकर, भारत मुद्रणालय. स्वाध्याय मंडल, औंध. (जि. सातारा)

ॐ

छूत और अछूत ।

या

चारों वर्णोंका व्यवहार ।

भाग १ ला ।

विषयोपन्यास ।

ॐ येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।

तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥ ४ ॥

अथर्ववेद अ. ३ । ३० ॥

" जिससे विद्वान लोग विभक्त न हों और जिससे वे एक दूसरे का वैर न करें, ऐसा (पूज्य और उत्तम) ज्ञान हम तुम्हारे घरके तथा सब लोगों को देते हैं । "

१ " हे दयालु परमेश्वर ! एकता को बढाने वाला और द्वेष का नाश करने वाला उत्तम ज्ञान जो तूने लोगों को दिया है, वह सारी जनता को मिले और सदबुद्धि तथा बन्धुभाव बढे । सब लोगोंके अंतःकरण में एक दूसरे के प्रति प्रेम की वृद्धि होवे, और इससे सहानुभूति बढकर लोग सार्वजनिक उन्नति कर लेने के योग्य होवें । "

२. इस मातृभूमि में इस पूज्य भारतवर्ष में अधिक नहीं तो ढाई हजार वर्षों से भिन्न भिन्न जातियों का जन्मसिद्ध उच्चनीच भाव

और इसीकी अनुगामी छूत अछूत जारी है। इतिहासका ध्यान-पूर्वक अवलोकन करने से मालूम होगा कि जैसे जैसे हम प्राचीन काल की ओर दृष्टिक्षेप करेंगे वैसेही हमें इस भेद भाव की मात्रा कम दिखाई देगी। इसी प्रकार जैसे जैसे हम आधुनिक काल की ओर बढेंगे वैसे ही उसकी मात्रा बढती हुई दिखाई देगी।

३ छूत अछूत का व्यवहार और जन्मसिद्ध उच्चता और नीचता का विचार हमारे भारतवर्ष में किसी विचित्र घटना के कारण चल पडा होगा। ऐसा विचार और किसी देश में नहीं दिखाई देता। सनातन धर्म में जो छूत अछूत का व्यवहार है वह ईसाई और इसलामी में नहीं दिखाई देता। भारत निवासी बौद्ध धर्मियों में इसका कुछ थोडा प्रचार है, पर भारतवर्ष के बाहर जिन देशों में बौद्ध धर्म जारी है उनमें उसका नाम निशान तक नहीं दिखता। बौद्ध धर्म के प्राचीन ग्रंथों से इस बात का पता नहीं चलता की सब मानव संसार को अपने धर्म में लाने की चेष्टा करनेवाले भगवान बुद्ध को यह प्रथा पसंद थी। इस पर से निश्चित रूप से कह सकते हैं कि असली बौद्ध धर्म को यह प्रथा मान्य नहीं थी। यदि हम कहें कि भारतनिवासी बौद्ध-धर्मियों में जो छूत अछूत का विचार है वह उनके हिंदुओं के सन्निध रहने का फल है तो अनुचित न होगा। पुराने ढंग पर चलने वाले पारसियों में धर्म कार्यों के समय छूत अछूत का कुछ विचार रहता है। परन्तु ईरान में रहनेवाले पारसी इन नियमों का पालन नहीं करते। उन लोगों में छूत अछूत का व्यवहार करीब करीब बिलकुल नहीं है। भारतीय पारसियों पर जैसी हिन्दुओं के निकट रहनेसे उनकी रीति रस्मों का प्रभाव पडा है वैसे ही ईरान के पारसियों पर मुसलमानों की रीतिरस्मों का प्रभाव

पडा है। इससे यह जानने के लिये कोई प्रमाण नहीं पाया जाता कि पारसी लोग इस व्यवहार को शुरू से मानते थे। तिस पर भी यदि उनके धर्म ग्रंथों का, दोनों स्थानों के पारसियों के रीतिरस्मों का और पारसी लोगों में ' कालानुसारित्व ' (काल के अनुसार बर्ताव) का जो विशेष गुण है उसका विचार करें तो मालूम होगा कि उन लोगों में छूत अछूत का वैसा व्यवहार कभी भी न था जैसा कि आज हिन्दु लोगों में है। भारत को छोड कर और किसी भी देश में जैन धर्म का प्रचार नहीं है; और उनकी सामाजिक रहन सहन पर हिन्दुओं का प्रभाव पडा है। इस से उनका स्वतन्त्र रीतिसे विचार करने की आवश्यकता नहीं है। शिंतो, कानफ्यूशियन आदि धर्मों में छूत अछूत के विचार का अत्यन्त अभाव है। तात्पर्य यह है कि जैसे इस छूत अछूत का प्रचार दूसरे किसी देश में नहीं है वैसे ही वह दूसरे किसी धर्म में भी नही है। इसकी उत्पत्ति और इसकी वृद्धि हिन्दुस्थान में और खास कर हिन्दु धर्म में ही हुई है। इसी कारणसे इसका सूक्ष्म विचार जैसे हिन्दु धर्म के ग्रंथों में दिखाई देता है वैसे वह दूसरे धर्म ग्रन्थों में नहीं पाया जाता।

(४) इस प्रकार यद्यपि छूत अछूत का प्रचार सर्वत्र है और हर एक काम में वह न्यूनाधिक मात्रा में दिखाई देता है तथापि भारत के सब स्थानों में एकही नियम के अनुसार वह नहीं पाया जाता। साधारण रीति से कह सकते हैं कि ज्यों ज्यों उत्तर की ओर जाते हैं त्यों त्यों इसका प्रचार कम दिखाई देता है और ज्यों ज्यों दक्षिण की ओर जाते हैं इसका प्रचार अधिक तीव्र होता जाता है। यह बात सच है कि भारतवर्ष के सनातन धर्म का वह एक मुख्य अंग है। तो भी भिन्न भिन्न

प्रान्तों में उस में भिन्नता पाई जाती है। छूत अछूत के जो नियम महाराष्ट्र में दिखाई देते हैं वे कर्नाटक और मद्रास में नहीं दिखाई देते और जो नियम इन स्थानों में जारी हैं वे बंगाल और पंजाब में नहीं हैं। किसी किसी स्थान में इसकी तीव्रता नजर आती है और किसी किसी स्थान में वह सूक्ष्म रूप में पायी जाती है। इस कारण से इसकी ऐसी व्यापक परिभाषा बनाना कि जिसमें सब प्रांतों की छूत अछूत सम्मिलित हो, कठिन काम है। दूसरे धर्म में और दूसरे देश के लोगों को यह बात बिलकुल अनोखी है। इससे इसका ऐसा लक्षण बताना कि जिससे वे लोग इसे ठीक ठीक जान लें करीब करीब असम्भव है।

५ प्रत्येक प्रान्त में छूत अछूत के विचार भिन्न भिन्न हैं और कहीं कहीं परस्पर विरुद्ध भी हैं। तथापि लोगोंको अपने प्रान्त के विचार धर्म के अनुसार और उस से भिन्न विचार धर्म के विरुद्ध जान पडते हैं! धर्म ग्रन्थों के अनुसार जो जातियां छूत हैं वे भी कई प्रान्तों में अछुत समझी जाती हैं और यदि वहां के लोगों को धर्मग्रन्थ का प्रमाण बताने की चेष्टा की जाय तो 'शास्त्राद् रूढिः बलीयसी' इस लोकोक्ति के अनुसार उस प्रमाण को मानने के लिये वे तैयार नहीं होते। इस परिस्थिति में जहां स्वेच्छासंचारी रूढि का शास्त्रवचनों की अपेक्षा अधिक मान है वहां ऐसी परिभाषा बनाना जिसे सब लोग मानलें कठिन काम है। तब भी साधारण रीति से कहा जा सकता है कि (१) रूढि, (२) देश का आचार, वृद्धोंके ख्यालात और (३) (४) ग्रन्थ का प्रमाण जिनका आदर करता है वे छूत हैं और जिनका निरादार करता है वे अछूत हैं। आज कल छूत अछूत का जो स्वरूप है उसकी ओर ध्यान देवें, तो मालूम होगा कि पहिले प्रमाण की अपेक्षा दूसरा प्रमाण गौण समझा जाता है।

परंतु यदि यथार्थ प्रमाण और अप्रमाण देखा जाय तो स्मरण रखना चाहिये कि दूसरा गौण नहीं है पहलाही गौण है। विचार की सुभीता के लिये यदि छूत अछूत के चार विभाग करें तो वे इस प्रकार होंगेः—

(१) जन्म ।
(२) परिस्थिति ।
(३) शुद्धता ।
(४) संस्कार ।

इन चार बातों को ध्यान में रख कर छूत अछूत का विचार समाज में किया जाता है। साधारण लोगों की समझ के अनुसार, वर्तमान स्थिति में, इन चार बातों में उत्तरोत्तर अधिकाधिक गौणता आती जाती है। पर यदि युक्ति, विचार और शास्त्र के वचनों को देखा जाय तो उपर्युक्त बातों में अधिकाधिक प्रधानता माननी पडेगी। अब यदि इन चारों का मेल पहिले की चार बातों से करना हो तो बहुत से भेद बनेंगे! वे कितने होंगे यह जानना अपनी अपनी कल्पना-शक्ति पर निर्भर है। उनका विस्तार से विवरण करना व्यर्थ है।

(१) जन्म ।	×	(१) रूढि ।
(२) परिस्थिति ।		(२) देशका आचार ।
(३) शुद्धता ।		(३) वृद्धों के ख्यालात ।
(४) संस्कार ।		(४) ग्रन्थों के प्रमाण ।

६. इन मुख्य भेदों की ओर ध्यान देने से छूत अछूत का कुछ ज्ञान हो जावेगा। इसका थोडा खुलासा करने की आव-श्यकता है।

(१) कोई जाति जन्म के कारण दूसरी जाति से नीच और अछूत समझी जाती है; और कोई जाति जन्म ही से उच्च और छूत समझी जाति है। इस भेद के लिये उनकी शुद्धता, उनके संस्कार या उनकी परिस्थिति का ख्याल नहीं किया जाता, केवल उनके जन्म पर ही ध्यान दिया जाता है। जैसे-ब्राह्मण जाति जन्म से ही ऊँची समझी जाति है और चमार, डोम, चण्डाल, आदि जातियां जन्मही से नीची समझी जाती हैं। नीच जाति के लोग यदि शुद्धता और स्वच्छता से भी रहें और उनकी हालत भी अच्छी होवे तब भी केवल इसी लिये कि उनका जन्म नीच जाति में हुआ है वे नीच और स्पर्श के लिये अयोग्य समझे जाते हैं।

ब्राह्मणादि उच्च जातियां सदा के लिये स्पर्श करने योग्य समझी जाती हैं। और चमार, चण्डाल आदि जातियां सदा के लिये अयोग्य समझी जाती हैं। इन जातियों का स्पर्श उच्च जातिओं से कभी भी सहा न जावेगा। इन उच्च और नीच जातियों के लोगोंको छोडकर और भी कई जातियां हैं (जिन्हे मध्यम वर्ग की जातियां कह सकते हैं) जो सिर्फ कुछ बातों में स्पर्श के लिये अयोग्य समझी जाती हैं। तेली, पन्सारी, बढई, लुहार आदि जातियां मध्यम जातियां हैं। ये लोग यदि शिक्षित हों धनवान हों अथवा अन्य किसी कारण से उनकी अच्छी दशा हो, तो वे आपस में सम्मिलित हो सकते हैं, सभा में ब्राह्मण के साथ बराबरी से बैठ सकते हैं, या ब्राह्मण के घर विवाह में सम्मिलित होनेवाले महिमानोंके साथ एक ही स्थान में बैठ सकते हैं। परन्तु चमार आदि का ऐसा हाल नहीं है। किसी भी कारण से उनकी अवस्था मध्यम जातिके लोगों की सी स्पर्श करने योग्य नहीं हो सकती। तात्पर्य यह कि जन्म परसे

निश्चय किये जाने वाली जातियों के उच्च, नीचे और मध्यम तीन भेद किये जा सकते हैं।

मध्यम जाति के लोग ऊँची जाति के लोगों से किसी किसी समय पर मिलजुल सकते हैं, पर कोई कोई समय ऐसे हैं जब कि इन जातियों का भी संबंध ऊँची जातियां बर्दाश्त नहीं कर सकतीं। जैसे भोजन के समय ब्राह्मण समाज में मध्यम जातिका मनुष्य प्रवेश तक नहीं कर सकता, पंगत में बैठ नहीं सकता, तब स्पर्श की बात तो बहुत दूर है। रसोई बनाते समय चौके में मध्यम जातिके मनुष्य का आना ही रसोई को अपवित्र बना देता है, तब उसका स्पर्श उसे अपवित्र करेगा इसमें आश्चर्य ही क्या? यह बात तो बिलकुल स्पष्ट ही है कि नीच जाति का स्पर्श किसी भी समय किसी भी ऊँची जाति के मनुष्य को बर्दाश्त न होगा। वर्तमान परिस्थिति इस प्रकार है।

(२) एक ही जाति के लोगों में से कोई कोई, परिस्थिति के कारण खास कर ऊँची जतियों में स्पर्श करने योग्य और कोई कोई अयोग्य माने जाते हैं। जैसे - सूतक में अर्थात जब किसी के घर का कोई संबंधी मर गया हो तब वह मनुष्य दूसरों के लिये कुछ समय तक अस्पृश्य हो जाता है। मध्यम और नीच जातियों में भी यही नियम प्रचलित है। लाश का स्पर्श भी इसी प्रकार अशुद्ध समझा जाता है। ऊंची जाति की लाश उसी जाति के लोगों तक को स्पर्श करने योग्य नहीं होती। उसे छूते ही स्नान करने की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार अछूत जातियों का स्पर्श होने से स्नान करना पडता है, उसी प्रकार जिसके निकट संबंधी की मृत्यु हो गई हो उसको या मुर्दे को स्पर्श करने से स्नान करने की आवश्यकता होती है। ऊपर बतलाए हुए उदाहरणों में जाति के संबंध से आने वाली अछूत

बहुत ही थोडी है, परन्तु उनमें अछूत परिस्थिति के कारण आ जाती है। एकही जाति के लोग जो थोडे ही समय पहले एक दूसरे को छू सकते थे परिस्थिति बदलने पर अछूत बन जाते हैं। अछूत का यह प्रकार परिस्थिति के कारण कुछ समय के लिये रहता है।

(३) शुद्धता के कारण भी होने वाला छूत अछूतका एक प्रकार है जो महाराष्ट्र तथा मद्रास की ओर विशेष रूपसे प्रचलित है। स्नान करने के बाद धोया हुआ वस्त्र पहिन कर उच्च जाती का मनुष्य स्वजातीय अस्नात मनुष्य को भी स्पर्श नहीं करता तब नीच जाति के मनुष्य को स्पर्श करने की बातही क्या? इस प्रकार अशुद्ध मनुष्य को अथवा अशुद्ध वस्तु को स्पर्श करने से उसका वस्त्र अशुद्ध हो जाता है। और कई वार ऐसा भी होता है कि शुद्धता के लिये इस प्रकार के अशुद्ध मनुष्य का स्पर्श हो जानेपर पुनः स्नान कर धोया हुआ वस्त्र पहिनना पडता है और किसी किसी समय केवळ वस्त्र बदलने से शुद्धता हो सकती है। इस शुद्धता के प्रकार में रेशम, ऊन, कोसा, सन इत्यादि के वस्त्र मामूली वस्त्रों से अधिक पवित्र समझे जाते हैं और वे साधारणतः अशुद्ध भी नहीं होते। परंतु सूतके कपडे खासकर धोतियां मामूली स्पर्श से अशुद्ध हो जाती हैं। यह छूत अछूत का प्रकार शुद्धता और अशुद्धता के कारण बना है।

(४) संस्कार— कोई खास पदार्थ किसी विशेष रीतिसे तैयार किये जांय तो वे दूसरी जाती के पास से भी स्वीकृत किये जा सकते हैं। 'कच्ची' और 'पक्की' का प्रचार जो उत्तरीय देशों में है इसी का उदाहरण है। चमार के पाससे यदि कोई चमडे की बनी चीज लेनी हो तो उसके ऊपर एक

तेल का बून्द डाल देने से वह शुद्ध होती है। तैलपक्व अथवा घृतपक्व पदार्थों में छूत अछूत नहीं रहती। जिन वस्त्रों पर दर्जी द्वारा सीने का संस्कार हुआ हो वे धोने पर भी शुद्ध नहीं समझे जाते, जैसेः— कुड़ता, कमीज, कोट, वास्किट, पजामा आदि। परन्तु जिस कपडे की वे चीजे बनी हैं वह कपडा यदि धोया जाय तो वह शुद्ध और पवित्र समझा जाता है। ऐसे कई रिवाज हैं जिनको जन्म, परिस्थिति अथवा शुद्धता में शामिल नहीं कर सकते वे सब संस्कार में शामिल हैं।

(४)रूढि — शुद्धता और अशुद्धता की ऐसी बहुतसी बातें हैं जिनके लिये ग्रन्थों में कोई प्रमाण नहीं मिलता। कई बातें ऐसी हैं जो ग्रन्थों में बतलाए हुए नियम के विरुद्ध होने पर भी समाज में दृढ रूप से रहती हैं। विचारशील पुरुष भी उन के सामने अपना सिर झुका देते हैं। ऐसी बातें और ऐसे रिवाज रूढि में शामिल हैं। उनके उदाहरण देखिये। नीच जातिका हिन्दू जो अछूत समझा जाता है, यदि ईसाई या मुसलमान बन जावे तो वह छूत बन जाता है। इसके लिये धर्म ग्रन्थों में कोई प्रमाण नहीं पाया जाता और विचार सेभी यह बात उचित प्रतीत नहीं होती। धर्म ग्रन्थों में ' न नीचो यवनात् परः ' सरीखे वचन मिलते हैं। मामूली मनुष्य को समझ में अपना धर्म सब धर्मों से अच्छा रहता है। इन बातों के रहते हुए भी हिन्दु धर्म के अनुसार नीच जातियों के लोग, जब तक वे हिन्दु हैं, अछूत समझे जाते हैं!! धर्मके, समाज के और राजनीति के व्यवहार में विचारशील लोग भी इन नियमों का पालन आंखें बंद करके करते हैं। इस प्रकार के सब नियम रूढि से संबंध रखते हैं।

(६) देश का आचार – किसी किसी प्रान्त में नाई का स्पर्श होने पर स्नान करना पडता है परन्तु किसी किसी प्रान्त में वही नाई घरके विस्तर तक बिछा सकता है। इस प्रकार के भिन्न प्रान्तोंकी छूत अछूत के व्यवहार इस भाग में शामिल हैं।

(७) वृद्धों के ख्यालात – वृद्ध लोग कभी कभी किसी बातको धर्म के विरुद्ध बतलाते और किसी को धर्म के अनुसार बतलाते हैं। उस समय वे धर्म ग्रन्थों के प्रमाणों पर अधिक ध्यान नहीं देते। किन्तु हमने आज तक ऐसा नहीं देखा' 'हमारी समझ में ऐसी बात न होनी चाहिए।" इस प्रकार कहकर उस को अग्राह्य बतलाते हैं। ऐसी बातों में वृद्ध पुरुषों की अपेक्षा वृद्ध स्त्रियों का मत अधिक प्रभावशाली रहता है। इस के लिये वृद्धों की स्मरण शक्ति एक मात्र आधार है। इसके आगे उन्हें देशाचार या धर्म-ग्रन्थों की भी विशेष पर्वाह नहीं रहती। इस प्रकार की बातें घरेलु होने के कारण उनका विस्तार अधिक नहीं होता। वाचक अपने घर की प्रथा को देखकर इन बातों के उदाहरण पा सकते हैं।

(५) ग्रन्थों का प्रमाण इसमें धर्मशास्त्र के अनेक ग्रन्थ शामिल हैं। कुछ आधुनिक ग्रन्थ भिन्न भिन्न प्रान्तों में भिन्न भिन्न हैं तब भी प्राचीन धर्म ग्रन्थों को सारे भारत वासी और बाहरी देशों में रहने वाले हिन्दु एकसा मानते हैं और उसके प्रमाणों का अदार करते हैं। विषय को समझने की दृष्टि से इस प्रकार के धर्म ग्रन्थों के छः विभाग हो सकते हैं। (१) वेदों की चार संहिताएं (२) ब्राह्मण ग्रन्थ, (३) स्मृति और धर्म शास्त्र (४) सूत्र ग्रन्थ, (५) पुराण

और (६) आधुनिक धर्म शास्त्र के ग्रन्थ। हिन्दुओं के धर्म शास्त्र के छः विभाग ऊपर बताए हैं। इन इन विभागों के द्वारा कौन से ग्रन्थ किस काल में बने हैं इस बात का भी पता चल सकता है। लोगों के आजकल के रिवाज़ और आचार आखीर के चार विभागों के अनुसार चलते हैं। किसी किसी स्थान में आधुनिक धर्म शास्त्र के ग्रन्थ ही अधिक प्रमाण माने जाते हैं। परन्तु यथार्थ में आखीर के चार विभागों की अपेक्षा पहले के दो विभाग अधिक श्रेष्ठ एवं आदरणीय हैं। मनुस्मृति मे भी कहा है।

या वेदवाह्याः स्मृतयः याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फला ज्ञेयास्तमोनिष्ठा हि ताः स्मृताः। मनु.

स्मृति ग्रन्थों के जो वचन वेद बाह्य होंगे और जो कुत्सित दृष्टि से लिखे गये होंगे वे निष्फल समझना चाहिये क्यों कि वे सब तमसे–अज्ञान के कारण लिखे जाते हैं।

इस प्रकार वेदबाह्य आज्ञाओं की व्यर्थता का स्मृतियों में भी उल्लेख है। जब स्मृति ग्रन्थों की यह दशा है तब आधुनिक ग्रन्थों के विषय में क्या कह सकते हैं? तात्पर्य यह कि धर्म संबंधी किसी बात का विचार करते समय आधुनिक ग्रन्थों की अपेक्षा प्राचीन ग्रन्थ अधिक माननीय होने चाहिये। ऐसा रहते हुए भी छूत अछूत का विचार आधुनिक ग्रन्थों की ही सहायतासे कई बार किया जाता है।

अब तक छूत अछूत के मुख्य आठ विभागों का स्वरूप बतलाया गया। उनको आपस में मिलाने से जो उपभेद बनेंगे उनकी ओर ध्यान देने की यहां आवश्यकता नहीं।

मुख्य विषय से संबंध रखने वाली बातों के लिये कौनसा आधार है और वह आधार किस मात्रा तक ग्रहण करने योग्य है इसका विचार करने के लिये इन आठ विभागों का हमें बहुत उपयोग होगा।

(७) अभीतक बतलाई हुई बातों पर खूब विचार करने से और हिन्दुओं की समाज स्थिति की ओर भी ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि सब ऊंची जातियां नीची जातियों को न्यूनाधिकतासे अछूत समझती हैं अर्थात् बिलकुल ही नीच जातियों को वे स्पर्श ही नहीं करतीं और कुछ ऊंची जातियों को केवल किसी खास समय स्पर्श नहीं करतीं। एकही जाति में किसी विशेष कारण से उत्पन्न होने वाली अछूतता का विचार गौण है, इसलिये उसका विवरण इस लेख में विशेष रूपसे करने की आवश्यकता नहीं है। मुख्य मुख्य प्रकारों का विचार करनेसेभी अपना कार्य सिद्ध होगा। जो जन्मसे ही अपने को शुद्ध समझते हैं वे ब्राह्मण हैं। भारत में पंचगौड और पंचद्राविड मिलकर कुल ब्राह्मण डेड करोड हैं। अंत्यज जिनको बिलकुल स्पर्श नहीं किया जाता और जिनकी छाया तक किसी प्रान्त में अछूत समझी जाती है, सारे भारत वर्ष में छः करोड हैं। ऐसे हिन्दु जिन्हें खास समय पर स्पर्श कर सकते हैं तेरह करोड हैं, इनका स्पर्श भी अशुद्धता उत्पन्न करता है परंतु उसमें एक विशेषता है इस अशुद्धता की तीव्रता कुछ कम रहती है। ये मध्यम जाति के लोग समाजमें मिलते जुलते हैं, ऊंची जातियों के घर जाकर भी बैठ सकते हैं पर उच्च ब्राह्मणों को उनको अपने साथ बैठालेना पसंत नहीं है। इस प्रकार हिंदु समाज में पूर्ण शुद्ध लोग डेड करोड और

कम अशुद्ध तथा अधिक अशुद्ध मिलकर बाईस करोड हैं। इसका मतलब यही होता है कि सब लोगों की समझ में अल्प संख्यावालों की अपेक्षा शेष अजान लोग हीन हैं। यह जानती हैं। यह प्रथा दो हजार वर्षों से बराबर चली आ रही है। इस लिये वह श्रेष्ठ जाति और निकृष्ट जाति दोनोंके नस नस में भरी हुई है। इस धार्मिक गुलामी का लोगों के मन पर विचित्र परिणाम हुआ है। उच्च जातियों के साथ समानता के हक्कों की भावना तक इन नीची जाति के लोगों में से बिलकुल नष्ट हो गई है। यह बौद्धिक अवनति है और इसका कारण है धार्मिक गुलामी इसका विचार आगे चलकर करेंगे। वर्तमान समय में समाज में जो छूत अछूत का व्यवहार है उसके अनुसार लोगों के चार विभाग बन सकते हैं।

(१) शिक्षित समाज - इस विभाग में विशेषतः नोकरी करने वाले लोग आते हैं तथा बडेबडे सरदार जागीरदार ओहदेदार बडे बडे व्यापारी बडे बडे अधिकारी और प्रसिद्ध विद्वान आदि इसमें शामिल हैं।

(२) मध्यम समाज— इसमें मामूली मुन्शी, दुकानदार, चित्रकारी या उसीके समान किसी कला विशेष का काम करके पेट पालने वाले अल्पशिक्षित लोग शामिल हैं।

(३) अशिक्षित समाज- बिलकुल अनपढे और मिहनत का काम करके पेट पालनेवाले लोग इसमें शामिल हैं। माली, कुणबी, धोबी, किसान आदि लोग इसी विभाग में आते हैं।

(४) अस्पृश्य समाज- इसमें ढेड, चमार, नामशूद्र, परया, अंत्यज, डोम, मेहतर, मिरासी आदि जातियां शामिल हैं। इनमें

से कुछ मेहतरों को छोड कर शेष सब हिन्दू हैं। पर दूसरे हिन्दुओं को इनका स्पर्श तक असहनीय है। तब रोटी को बात ही क्या? एक ही धर्म में रहते हुए भी इस प्रकार का व्यवहार दूसरे किसी धर्ममें नहीं पाया जा सकता।

और भी एक समाज हो सकता है। वह जंगली लोगों का बना हुआ है। पर वे अस्पृश्य जातियों के समान समाज के बाहर नहीं समझे जाते। इस कारण और वे अपने को हिन्दु-धर्मीय नहीं कहलाते इसलिये भी उनका विचार इस स्थान में अलग नहीं किया जावेगा। ये लोग किसी किसी बातमें तीसरे विभाग में शामिल किये जा सकते हैं और किसी किसी बातमें चौथे विभाग में। इस लिये जो बात इन दो विभागों के लिये कही जावेगी वही उनके लिये भी होगी। उनके विषय में अलग कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। केवल स्थिती का विचार करना हो तो हिन्दु समाज चार भागों में बंट सकता है जैसा कि ऊपर बताया गया है। और संख्या का विचार करते हुए अछूत जातिका अनुपात देखा जावे तो तीन छूत हिंदू पीछे एक अछूत ऐसा हिसाब बैठता है। जिस समाज का चौथा हिस्सा इस प्रकार अछूत, हीन तथा निंदित माना जाता है उसके द्वारा सहानुभूति पर निर्भर रहने वाले कार्यों की आशा कहां तक की जा सकती है और उस समाज को सचेत भी कैसे कह सकते हैं?

पहले कहा जा चुका है कि इस अछूत जाति के लोगों की संख्या छः करोड है। इन छः करोड लोगोंको समाज, सभा, पाठशाला, अस्पताल आदि स्थानों में- जहां जाने का प्रत्येक हिन्दु का जन्मसिद्ध हक है- जाने की मनाई है। पहले तोन विभाग के लोग किसी किसी समय एकत्रित

हो सकते हैं। मंदिर में या सभामें वे एक ही स्थानमें मिलकर बैठ सकते हैं, परन्तु चौथे विभाग के अछूत लोगों का प्रवेश उन स्थानों में नहीं हो सकता। इस बात की ओर ध्यान देने से स्पष्ट होगा कि समाजने इनका कैसा तीव्र बहिष्कार किया है और बहिष्कार से उनकी मानसिक अवनति कितनी भयंकर हुई है।

८ यह एक दो मनुष्यों का प्रश्न नहीं है। यह छः करोड लोगों के जन्मसिद्ध समान हक का प्रश्न है। ईश्वर ने पांच कर्मेन्द्रियां और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार सारी मनुष्य जाति को समानता से बांट दी है। हर एक मनुष्य के शरीर में उन्नति करने के लिये आत्मा रखा हुआ है। और हरएक स्थान में ईश्वर विद्यमान है। ब्राह्मण के शरीर में जिस प्रकार प्रकृति और पुरुष हैं उसी प्रकार वे चंडाल के शरीर में भी हैं। तो इसी समाज को विशेष रूपसे बहिष्कृत क्यों समझते हैं?

भगवद्गीता में इस प्रकार कहा है:-

> विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
> शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः॥
>
> गीता अ. ५

"विद्वान्, ब्राह्मण, गाय, हाथी, कुत्ता और चंडाल को पण्डित एकसी दृष्टि से देखता है।"

जीवमात्र की भलाई तथा विश्वकुटुम्बित्व दोनों में समान हक का विचार पूर्णतया सम्मिलित है। किसी खास समाज को बहिष्कृत समझने से शिक्षित समाज से उसका संबंध नहीं आता इस लिये उनके हृदय पर उच्च संस्कृति का प्रभाव

बिलकुल नहीं पडता। सहवास और सहानुभूति ही उन्नति के साधन हैं। हर एक मनुष्य यदि जन्म से ही- वह अच्छे कुल का क्यों न हो- अलग रखा जावे तो उसकी उन्नति किस प्रकार हो सकेगी? ज्ञान प्रसार के लिये एक दूसरे का मिलना जुलना ही नितान्त आवश्यक है। छः करोड हिन्दुओं को अज्ञानता में सडाने का पातक छूत हिन्दुओं के ही सिर पर है। ये हिन्दु हमारी समाज का एक अंग होते हुए भी अलग हो गये हैं। हम लोगों के बांधव रहते हुए भी वे हम लोगोंसे दूर हो गये हैं। हम लोगोंकी भलाई के कामों में वे मदद करने वाले हैं तिस पर भी उनका दूसरों से संबंध न आने के कारण परस्पर प्रेम बढता नहीं है।

अछूतों के उद्धार का यह प्रश्न सनातन धर्मियों के चौथे हिस्से का प्रश्न है तथा भारतीयों के पांचवें हिस्से का है। इतने विशाल समाज का हित या अहित इस प्रश्न के उचित जवाब पर निर्भर है और इसी लिये इस प्रश्न पर पूर्ण विचार करना नितान्त आवश्यक है।

उत्पत्ति, परिवर्तन और स्वरूप।

भाग २ रा.

१ पहले विभाग में बतलाया गया है कि छूत और अछूत का प्रश्न किसी एक व्यक्ति का नहीं है। किन्तु वह सब प्रकार से सब लोगों के हित का और जन समाज से संबंध रखनेवाला बहुत व्यापक प्रश्न है। इस कारण उसे बहुत ही महत्त्व प्राप्त हुआ है। इस लिये इसका विचार पूर्णतया होना चाहिये। पहले देखना चाहिये कि प्राचीन काल में जातिभेद था या नहीं। क्यों कि छूत अछूत का विचार जातिभेद के मूल सिद्धान्त पर स्थित है। श्रीमद्भागवत में इस प्रकार कहा है:-

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्व वाङ्मयः।
देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च ॥ ४ ॥

—श्रीमद्भागवत स्कं० ९।१४

"पहले पहले, सब वाङ्मयका व्यापने वाला प्रणव (ओंकार) एकही अद्वितीय नारायण देवता, एक अग्नि और एक ही वर्ण था।"

इस वचन में 'पुरा' शब्द है और वह बहुत ही प्राचीन काल की स्थिती को बतलाता है। प्राचीन कालमें एकता कैसी थी इसमें उत्तम रीति से वर्णन की गई है। इस श्लोक में बतलाई हुई प्राचीन काल की स्थिति इस प्रकार है,— (१)प्राचीन कालमें भिन्न भिन्न मत नहीं थे। केवल एकही वेद धर्म का

प्रचार था। इस लिये उन दिनों में आज कल के समान गड्डों से गिनी जाने वाली पुस्तकें नहीं थीं। केवल एकही पुस्तक थी जो धर्म की उचित रास्ता बतलाती थी और वह थी वेद। (२) इस समय भिन्न भिन्न गुरू भिन्न भिन्न मंत्रों का उपदेश करते हैं। प्राचीन कालमें ऐसा न था। केवल एक मंत्र और वह भी प्रणव (ॐ) मंत्र का जप किया जाता था। (३) उन दिनों उपासना के लिये आजकल जैसे भिन्न भिन्न देवता नहीं थे। किन्तु एक ही देवता की उपासना की जाती थी और वह भी सर्वव्यापी नारायण की। (४) एकही अग्नि में सब लोग होम करते थे। (५) इसी प्रकार उस समय केवल 'एकही वर्ण' था, आज जैसी सैकडों जातियां न थीं। भारतवर्ष में जो भेद आज दिखते हैं उनके कारण इस श्लोक से मालूम हो सकते हैं। वे इस प्रकार हैं:— (१) एक ही वर्ण या एक ही जाति के अस्तित्व का विचार लुप्त होकर उसके स्थान में भिन्न भिन्न जातियां जन्म से ही बनती हैं ऐसा विचार चल पडा। (२) उपास्य देवता एक ईश्वर है यह भाव जाता रहा और उसके स्थान में अनेक देवता की उपासना उत्पन्न हुई। (३) गुरू को जिस मंत्र का उपदेश देना चाहिये वह ॐ कार मंत्र जाता रहा और उसके स्थान में कई भिन्न भिन्न मंत्र जारी हुए। साथ ही साथ हरएक गुरु के चेले अपनी अलग वर्ग मानने लगे। (४) वेदों के लिये नाम मात्र का आदर रहा और सब काम आधुनिक ग्रंथों की सहायता से होने लगे। ऊपर लिखे भागवत के वचन के अनुसार हम कह सकते हैं कि ऊपर के चार कारणोंसे समाज में भेद का विचार प्रचलित हुआ। एक वर्ण की कल्पना महाभारत में भी है पर वह अन्य शब्दों में है।

एकवर्णमिदं पूर्वं विश्वमासीद् युधिष्ठिर ॥
कर्मक्रियाविभेदेन चातुर्वर्ण्यं प्रतिष्ठितम् ॥
सर्वे वै योनिजा मर्त्याः सर्वे मूत्रपुरीषजाः ॥
एकेन्द्रियेन्द्रियार्थाश्च तस्माच्छीलगुणैर्द्विजः ॥
शूद्रोऽपि शीलसंपन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत् ॥
ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीनः शूद्रात् प्रत्यवरो भवेत् ॥

—महाभारत

"हे युधिष्ठिर! इस जगत में-इस पृथ्वीपर पहले एकही वर्ण था। गुण और कर्म के विभाग से आगे चलकर चातुर्वर्ण्य स्थापित हुआ। सब मनुष्यों की उत्पत्ति योनिसे है, और सब लोग मूत्रपुरीष के स्थान से ही पैदा हुए हैं; सबकी इन्द्रियवासनाएं समान हैं। (इस कारण जन्मतः उच्च नीच भेद मानना उचित नहीं।) इसलिये शीलकी प्रधानता से ही द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्ण) होते हैं। यदि शूद्र भी शीलसम्पन्न हो तो उसे भी गुणवान् ब्राह्मण समझना चाहिये और यदि ब्राह्मण क्रियाहीन हो तो वह शूद्र से भी नीच हो जावेगा।

महाभारत का कथन इस प्रकार है। यह वचन श्रीमद्भागवत के वचन से पूर्णतया मिलता जुलता है। सब विचारशील धार्मिक लोग इन दोनों ग्रन्थों के वचनों को ग्राह्य समझते हैं। इन श्लोकों में भी "पुरा" शब्द है और वह भागवत के 'पुरा' शब्द से सूचित प्राचीनत्व बतलाता है। गुण और कर्म पर से चार वर्ण उत्पन्न हुए पर पहले एकही वर्ण था। यह विचार ध्यान में रखने योग्य है:—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ॥

भ. गीता. ४। १३

"मैंने गुणकर्म के विभाग से चातुर्वर्ण्य उत्पन्न किया" ऐसा जो गीता में लिखा है वह भी इस प्राचीन स्थिति का विचार करके ही लिखा है। ऊपर के श्लोकार्ध का भाव यही है कि एक ही वर्ण के लोगों के उनके गुणधर्म के अनुसार मैंने चार विभाग किये हैं। विद्या की ओर जिनके मन का अधिक झुकाव था उन्हे ब्राह्मण कहा, शौर्य और साहस की ओर जिनकी स्वभाव ही से मनः-प्रवृत्ति थी उन्हे क्षत्रिय कहा, व्यापार की ओर जिनका दिल था वे वैश्य समझे गये और शेष अर्थात् वे हीन बुद्धिलोग जिनके लिये ऊपर के तीन वर्णों में स्थान नहीं था हीन बुद्धि हाने के कारण अलग दर्जे के समझे गये और शूद्र कहलाये। इस व्यवस्थाके पहले ऐसी समझ थी कि सब लोग एक हो वर्ण के हैं।

२. 'चातुर्वर्ण्य' शब्द की व्युत्पत्ति 'चत्वार एव वर्णाः चातुर्वर्ण्यम्" है।

इस व्युत्पति से निश्चित रूपसे कह सकते हैं कि केवल चारही वर्ण किये गये, पांच नहीं। यदि सब मनुष्यों का स--माज गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार चार ही वर्णों में विभाजित किया गया था तो क्रम प्राप्त है कि आजकल जिन्हे अछूत कहते हैं वे छः करोड लोग इनमें से किसी एक वर्ण में अवश्य शामिल थे। अस्पृश्य समझे जाने वाले लोगों में उच्च जाति के योग्य निस्संदेह कई गुण हैं। यदि 'दुर्जनतोष-न्याय' से इन्हें हम शूद्रों में शामिल करते हैं तो शेष तीन वर्णों के लोगों की सेवा करना उनका धर्म निश्चित होता है। जिनका उच्च जातियों के साथ सम्मिलित होने का (परिचर्या के लियेही क्यों न हो) हक है' उन छःकरोड लोगों के इस स्वाभाविक हक को धार्मिक बहिष्कार ने पैर के तले कुचल डाला है।

देखना चाहिए कि इस घटना के कौनसे कारण हैं।

३. हिन्दुस्थान का इतिहास सूक्ष्म दृष्टिसे देखने पर ज्ञात होगा कि इसप्रकार के बहिष्कार के लिये मुख्यतया तीन कारण हैं:-(१) ला ब्राह्मणों की ओर से, (२) रा क्षत्रियों की ओर से, और (३) रा वैश्यों की ओर से हुआ होगा। यह कहना अनुचित न होगा कि तीनों वर्णोंके लोग अंशतः इस बहिष्कार के उत्तरदाई हैं। इस बातका पता चलाने के लिये हमें थोडा प्राचीन इतिहास भी देखना आवश्यक है।

४. हमारे देश की धर्मक्रान्ति के इतिहास का अवलोकन बारीकी से किया जावे तो मालूम होगा की कमसे कम (१) यज्ञयुग, (२) ब्रह्मयुग, (३) योग युग, (४) पठणयुग, और (५) विज्ञान युग ये पांच युग अब तक हुए हैं! वैदिक काल में यज्ञ युग था तथा उपनिषद् ग्रन्थों के समय ब्रह्मयुग उन्नत दशा में था। हर एक मनुष्य की प्रवृत्ति ब्रह्मसाक्षात्कार होने के लिये जिन नियमों की आवश्यकता है उनकी रोज के आचरण में लाने की ओर थी। पहलेयुग में जिन नियमों का पालन कोई लोग विशेष ही करते थे, वे नियम किसी पद्धति के अनुसार जिस युग में हर एक मनुष्य के प्रति दिन के आचरण में आये, वह योग युग है। योगयुग के अनन्तर लोगों का ध्यान मन्त्र-जप- सिद्धि की ओर अधिक आकर्षित हुआ। लोगों की समझ हुई कि यदि केवल किसी अक्षर समुच्चय का ही जप करें तो सिद्धि प्राप्त होगी और इससे अर्थ की ओर ध्यान न देकर केवल पठन करनेकी ओर लोगोंकी प्रवृत्ति बढती गई। यह पठन युगका अब भी जारी है। हां, अब विज्ञान युग का आरम्भ हुआ जरूर है इस प्रकार के पांच युग हमारा धर्म पार कर चुका है। हर एक युगका प्रभाव मूल धर्म पर पडा है। इसलिये आजकल यद्यपि धर्म की ग्लानि हुई है

तो भी वे संस्कार थोडे बहुत दिख पडते हैं। वैदिक काल के यज्ञ युग में सब को अग्नि के पास बैठकर हवन करने का अधिकार था; देखिये—

सत्यमहं गभीरः काव्येन, सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः ॥
न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय, यदहं धरिष्ये ॥ ३ ॥

अथर्व० ५. ११.

"सच मुच मैं काव्य से (ज्ञान से) गंभोर हूं, और उसके उत्पन्न होने से ही मैं जातवेद (ज्ञात वेद या वेदप्रकाशक) हुआ हूं। जो काम मैं करता हूं (धारण करता हूं) उसे अच्छी तरह से जानने के लिये न दास (शूद्र) समर्थ है और न आर्य।"

यह अथर्व वेद में अग्निका वचन है। अग्नि शब्द का अर्थ परमेश्वर समझिये या भौतिक अग्नि समझिये उससे मंत्र के अर्थ में किसी प्रकार का बदल नहीं होता। ऊपर दिये हुए मंत्र का सीधा भावार्थ इस प्रकार है:- 'दास, शूद्र या (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) त्रैवर्णिक आर्यों में जन्म के कारण जो भेद उत्पन्न हुआ है; उसे अग्नि (ईश्वर) नहीं मानता, किन्तु वह उन के गुणकर्मोंसेही उनकी श्रेष्ठता मापता है। अग्नि के पास या परमेश्वर के पास जाने का जितना हक ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जैसे त्रैवर्णिक आर्यों को है, उतनाही हक शूद्रों को, दासों को या अनार्यों को है।' उसी प्रकार–

समानी प्रपा सह वो अन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि।
सम्यञ्चो अग्निं सपर्यत आरा नाभिमिवाऽभितः ॥ ६ ॥

अथर्व० ३। ३०

"(मनुष्यो!) तुम्हारी पानी पीने की और भोजन की

जगह एक ही रहे। मैंने तुम सब लोगोंको एकसी धुरामें जोत दिया है। जिस प्रकार चक्र की नाभी में आरा बैठे रहते हैं उसी प्रकार तुम भी इकट्ठे हो कर अग्नि में हवन करो (और परमात्मा की उपासना करो)"

ऊपर लिखे हुए अथर्व वेद के मंत्र का अर्थ इस प्रकार है। यह आज्ञा सब लोगों को समत्वसे ही की गई है। इसमें पक्षःपात के लिये कोई स्थान नहीं। चक्र के आरे जिस प्रकार बिलकुल एक से रहते हैं, उनमें से किसी एक का महत्व अधिक और दूसरे का कम नहीं रहता, उसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रूपी चार आरे राष्ट्रचक्र में जमाएं हैं। हम सब एक ही राष्ट्रचक्र के अवयव हैं। चक्र की सुस्थिति और पुरोगति के लिये हम लोगों की एकता अत्यंत आवश्यक है इस बात को ध्यान में रखकर एकता करनी चाहिये और इकट्ठी उपासना करनी चाहिये। इस उपदेशसे और पहिले दिए हुए मंत्र से ज्ञात होगा कि वैदिक काल के यज्ञ युग में एक ऊँचा और एक नीचा इस प्रकार का जन्म पर से सिद्ध होने वाला भेद न था; और सब उपासना के समय तथा यज्ञ के समय एकत्रित हो सकते थे।

"एक ही धुरा में सब लोग एक से जोते गये हैं" इस विधान की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। राष्ट्र रूपी रथ की एक ही धुरा में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार घोडे जोते गये हैं। वैदिक परंपरा की ओर ध्यान देने से विदित होगा कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य शिक्षित घोडे हैं और अनार्य शूद्र अशिक्षित घोडा है। वह शिक्षित होवे इसी लिये तीन शिक्षितों के साथ जोता गया है। इसको अलग कहने की आवश्यकता नहीं है कि शूद्रों में अतिशूद्र, नामशूद्र और

सत-शूद्र शामिल हैं। इस उपदेश की व्याप्ति की ओर ध्यान दें तो मालूम होगा की मनुष्य समाज के एक विभाग हमेशा के लिये बहिष्कृत कर उसे अलग रखने की हीन कल्पना को बिलकुल आधार नहीं है। राष्ट्र रूपी रथ को सीधी रास्ते पर से आगे ले जाने के विचार से ही उसे तीन शिक्षित और एक अशिक्षित घोडा जोता गया है। यह अशिक्षित घोडा उन तीनों के साथ (अलग रहने से नहीं) ·· चलने से उनकी योग्यता को पहुंचेगा। शिक्षितोंने अशिक्षितोंको, आगे बढे हुए लोगोंने पीछे पडे हुए लोगों को, किनारे पर खडे हुए मनुष्यने डूबने वाले को मदद करके अपने पास खींचना चाहिये। यही वैदिक धर्म ऊपर के मंत्र से स्पष्ट होता है। इस उपदेश के विरुद्ध कुछ लोगों को अलग रखना पाप है। रथ की उपमा पूर्ण उपमा है। उसकी और ध्यान देकर वाचक विचार करें।

(५) इस आधार से यह स्पष्ट है कि वैदिक काल में अनार्यों पर भी इस प्रकार का बहिष्कार न था। उस समय के आर्य अनार्यों को उनकी हीन संस्कृति के कारण अलग रखते थे, परंतु उन्हें आर्योंमें सम्मिलित होने देते थे। आगे चलकर ब्रह्मयुग का उत्कर्ष उपनिषद् काल में हुआ। उस युग में भी जातिबद्ध संकुचित विचार न थे। देखिये :-

जातिर्ब्राह्मण इति चेत् तन्न।

—वज्रसूचिकोपनिषद्

"जन्मसे ब्राह्मण होता है यह सच नहीं।" ऐसा कहकर स्पष्ट बताया है कि ऋष्यश्रृंग, वसिष्ठ, विश्वामित्र, अगस्ति आदि अन्य जातियों में पैदा हुए लोग भो (धर्माचरण से) ब्राह्मण हुए और अन्त में "एक सर्वव्यापक अद्वितीय परमात्मा को जो जानता है

वही ब्राम्हण।" इस प्रकार ब्राह्मण का लक्षण उसी उपनिषद् में कहा है। वज्रसूचिकोपनिषद् मानों जातिभेद के 'मूलपर कुठार' ही है। इस उपनिषद् में ब्राह्मण जन्म से नहीं होता इतना निश्चित करके आगे कंठरव से ध्वनित किया है कि कोई भी वर्ण जन्म से नहीं समझना चाहिये। उसी प्रकार :—

पौल्कसो अपौल्कसो भवति॥

बृहदारण्यकउप० ४।३।२२

"चांडाल भी (इस ज्ञान से) अचांडाल (उच्च) होता है।" इस प्रकार का बृहदारण्यकोपनिषद् का वचन है। वैसेही :—

अन्योऽप्येवं यो विद्ध्यात्ममेव॥

कठोपनिषद् २।६।१८

न केवल नचिकेता ही इस ज्ञान से ब्रह्मपद को प्राप्त कर सका "दूसरा भी जो इस ज्ञान को समझ लेवे इसी प्रकार श्रेष्ठ होगा।" इस प्रकार सब को यह मार्ग एकसा खुला है। इस बातका पता कठोपनिषद् से चलता है। इसी ब्रह्मयुग में अज्ञातकुल जाबाली का उपनयन संस्कार होकर वह द्विज बनाया गया। इसी समता के युग में शूद्रीपुत्र महिदास ऐतरेयने द्विज बनकर ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण की रचना की। जब तक उस समय का यह इतिहास विद्यमान है तब तक यह नहीं कह सकते कि उस समय आजकल के समान अन्त्यजों पर तीव्र बहिष्कार था। इस ब्रह्मयुग में ब्रह्म के व्यापकता की कल्पना पूर्णता को पहुंची; और इसी लिए जिनसे ब्रह्मसाक्षात्कार हो सकता है ऐसे नियम साधारण जनता में चलाने की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ। नित्यकर्म का ऐसा सिलसिला इस युग में जमाया गया कि हरएक मनुष्य को योग के चार अंग यम, नियम, आसन और प्राणायाम का कुछ न कुछ अभ्यास हो जाय। इस समय के कर्मकाण्ड

में जो पद्धति प्रचलित है वह सम्भवतः आगे चलकर बदली गई होगी पर मालूम होता है कि इस युग में वह सुव्यवस्थित थी। हर एक काम के प्रारम्भ में आसन, आचमन, प्राणायाम की जो प्रथा आजकल दीखती है उससे इन योग नियमों के सार्वत्रिकता का पूरा पता चलता है। योग में :—

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ॥ ३० ॥
शौचसंतोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥३२ ॥

पातंजल योगदर्शन। पा० २

(६) "अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इस प्रकार पांच यम और शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान इसप्रकार पांच नियम कहे गये हैं।" यदि यमोंका पालन पूरी रीतिसे हुआ तो नियमोंका भी पालन हो सकता है। जबतक 'हिंसा' होती जाती है तब तक 'शौच (शुद्धि)' नहीं रह सकता। इसी प्रकार अन्य अंगों के विषय में समझना चाहिये। इस अहिंसा के प्रचार के समय हिंसा करने वालों का अहिंसकों की ओर से और मांस भक्षकों का शाकाहारी लोगों की ओर से बहिष्कार किया गया। अहिंसा में भूतदया, सर्वभूतप्रेम, जिव्हा का अलौल्य आदि उच्च गुण हैं इस लिये स्वभाव ही से इन अहिंसा वालों का महत्त्व सब लोगों ने मान लिया। ब्राह्मणोंने औरों का किया हुआ यह बहिष्कार है। दूसरा अंग आगे देखियेः—

शौचात् स्वांगजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥ ४० ॥

पातंजलयोग पा. २

व्यासभाष्यम्-स्वांगे जुगुप्सायां शौचमारभमाणः कायावद्यदर्शी कायानभिष्वंगी यतिर्भवति॥किं च परैरसंसर्गः कायस्वभावलोकी

स्वमपि कार्यं जिहासुः मृज्जलादिभिराक्षालयन्नपि कायशुद्धिम-पश्यन् कथं परकायैरत्यन्तमेवाप्रयतैः संसृज्येत॥ ४० ॥

"यदि स्वच्छता के नियमोंका पालन करें तो अपने देहसे भी घृणा उत्पन्न होती है और जान पडता है कि अन्य मनुष्यसे संसर्ग न होवे।" इस सूत्रपर भगवान् बादरायण व्यास कहते हैं:- "अपने शरीर में मल है। उसे नष्ट करने के लिये शुद्धि करते हुए शरीर का स्वभावमालिन्य और भी नजर आता है। यह शरीर का मालिन्य नजर आने पर शरीर की आसक्ति नष्ट हो जाती है और इस प्रकार मनुष्य संन्यासी बनता है। शरीरकी-शुद्धि-करनेवाला जब देखता है कि मिट्टी, पानी आदि से धोने पर भी निज का शरीर पूर्णतया स्वच्छ नहीं होता तब वह दूसरे के अत्यंत अस्वच्छ शरीर से संगर्स करने के लिये कैसे तैयार होगा ? "

योग की इस स्थिति का अंत्यजों के बहिष्कार से घनिष्ठ संबंध है। योग युग में जब लोग योगके यम नियमों का पालन करने लगे तब शुद्धता की ओर उनका या कुछ लोगों का - ध्यान आकर्षित हुआ। आगे चलकर स्वच्छता के नियमों का पालन करते करते यह मालूम हुआ कि अपना शरीर बहुत धोने पोछने पर भी बार बार मलिन होता ही है। यदि हमेशा स्वच्छता रखने वालों के शरीर की यह हालत, तब स्नान न करने वालोंका या अच्छी तरह स्नान न करने वालों की क्या हालत होगी? इसीलिये योग मार्ग में लगे हुए लोग जनसंसर्ग से अलग रहने लगे। मलीन लोगों के पास जाना तक उनसे सहा न जाता था। इस लिये इन लोगोंका और दूसरों का सहवास होना असंभव हो गया।

मांस भक्षण करने वाले, प्याज, लहसून आदि उग्र गंध वाले पदार्थ हमेशा खाने वालोंके पसीने से जैसी दुर्गन्ध आती है वैसी

दुर्गंध दूध, घी, गेहूं, चांवल इत्यादि सात्विक पदार्थ खानेवालोंके पसीने से नहीं आती। दुर्गन्ध की तीव्रता और उग्रता खाई हुई चीज के गुणधर्म पर बहुत कुछ अवलम्बित है। यह बात मालूम होते ही कोई कोई चीजें अयोग्य समझी गईं और कोई कोई चीजें भक्ष्य समझी गईं। इस प्रकार स्वच्छता के पालन करने वालोंकी अन्य अस्वच्छ लोगोंके दूर रखने की ओर प्रवृत्ति हुई। सारांश यह कि जैसे मांसाहारी और शाकाहारी दो बडे पक्ष अहिंसा के तत्त्व के कारण निकले वैसेही स्वच्छता के विशेष विचारों के कारण 'शुचि' और 'अशुचि' दो बडे पक्ष हुए और नैसर्गिक मानवी प्रवृत्तिके अनुसार एक दूसरे सेअलग रहने लगे। और जान पडता है कि इन दो कारणों से ब्राह्मणों द्वारा दूसरों का बहिष्कार हुआ होगा।

(७) अब यह देखना है कि क्षत्रियों द्वारा बहिष्कार क्यों हुआ। आर्य लोग अपने उत्तरध्रुव के निवासस्थान से उतरते उतरते हिंदुस्थान में आये। उनमेंसे क्षत्रिय वर्ण के लोग बडे शूर और तेज मिजाज के थे। उन्होंने भारतवर्ष के मूल निवासियों को जीत कर अपने आधीन किया। पहले पहले जब तक इन लोगों का साम्राज्यमद अधिक नहीं था और इनमें मूल सनातन धर्म के विचार जागृत थे। इनलोगों ने मूल निवासियों को अपने साथ मिलने दिया। किसी किसीको नौकरी के लिये और किसी किसी को उन के गुणों के कारण द्विज बना लिया। परंतु जब उन में 'हम जेता और वे जित' की भावना वढी और इन लोगों को यदि अलग न रखें तो हमारा महत्त्व घट जावेगा, यदि इन को हमलोग में मिल ने दिया तो हमारी उस में बडाई ही क्या? आदि विचार बढे तब अनार्थों को अलग रखने के लिये कानूनी उपाय सोचे जाने लगे। देखिए:—

चांडालश्वपचानां तु बहिर्ग्रामात् प्रतिश्रयः ॥
अपपात्राश्च कर्तव्या धनमेषां श्वगर्दभम् ॥ ५१ ॥
वासांसि मृतचैलानि भिन्नभाण्डेषु भोजनम् ॥
कार्ष्णायसमलंकारः परिव्रज्या च नित्यशः ॥५२॥
न तैः समयमन्विच्छेत् पुरुषो धर्ममाचरन् ॥
व्यवहारो मिथस्तेषां विवाहः सदृशैः सह ॥५३॥
अन्नमेषां पराधीनं देयं स्याद्भिन्नभाजने ॥
रात्रौ न विचरेयुस्ते ग्रामेषु नगरेषु च ॥ ५४ ॥
दिवा चरेयुः कार्यार्थं चिन्हिता राजशासनैः ॥
अबांधवं शवं चैव निर्हरेयुरिति स्थितिः ॥५५॥
वन्यांश्च हन्युः सततं यथाशास्त्रं नृपाज्ञया ॥
वध्यवासांसि गृह्णीयुः शय्याश्चाभरणानि च॥५६॥

मनु० अ० १०

"चांडाल, श्वपच आदि जातियों को चाहिये कि वे गांव के बाहर रहें। वे अपने पास वर्तन न रखें और कुत्ता, गधा ही उनका धन हो। मुर्दे के ऊपरके वस्त्र ही उनके वस्त्र हों। इनको चाहिये कि ये फूटे मडके में से ही खावें; लोहे के गहने पहिने और हमेशा भटकें। दूसरे लोग इनसे संबंध न रखें; उनके विवाह आदि आपसही में हों, उन्हें अन्न देना हुआ तो खप्पर में ही दिया जावे, ये लोग रात्रि के समय शहरमें या गांव में न जावें, दिनके समय कुछ कामके लिये जाना पडा तो खास चिन्ह पहिनकर ही जायें। लावारिस मुर्दों को लेजाने का काम ये करें, राजा की आज्ञा के अनुसार जो वध्य हुए हों उन्हें ये लोग नियम के अनुसार मारें, और उनके बदन पर जो कपडे या गहने हों वे ये लोग लेवें।"

इस प्रकार भयानक कानून दो हजार साल पहिले बनाकर

उसको कडी रीतिसे जारी किया। (१) गांव में न रहें, (२) साजे बर्तन न रखें, (३) दूसरे नगरवासियों के समान रास्तेपर से न घूमें जैसे अमानुषी नियमों के साथ और एक नियम भी देखने योग्य है।

शक्तेनाऽपि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः ॥
शूद्रोऽपि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते ॥१२८॥ मनु० अ. १०

"सामर्थ्य होने पर भी शूद्र द्रव्यसंचय न करें क्यों कि शूद्रको धन मिलने से वह द्विज को उपद्रव पहुंचाता है।"

इस प्रकार कडे कानून बनने पर गरीब बेचारे अनार्य की सिर उठाने तक की मुश्किल हुई। पहिले उन्हे आर्यों की परिचर्या करने की रास्ता खुली थी। परंतु इससे भी वे अलग किये जाने पर पहिले की उनकी निराश्रित दशा दिनोदिन अधिक शोचनीय होती गई। रहने के लिये गांवमें स्थान नहीं, धनसंचय करने का हुकुम नहीं, अच्छे कपडे पहिनने की इजाजत नहीं, कोई भी उद्योग करने के लिये गुंजायश नहीं। ऐसी हालत में दिन काटना कितना कठिन होगा? पर आर्यों को तो उन दिनों में विजय का मद चढा था। इसलिये ब्राह्मण अपने तप के अहंकार के कारण और क्षत्रिय अपने जेतृत्व के मद के कारण ऐसी स्थिति में न थे कि इन लोगों की ऐसी बुरी दशा का विचार करें।

(९) वैश्योंने भी इन अनार्यों के दुःख को बढाने में कुछ कमी न की। आज जो भिन्न भिन्न जातियाँ दिखती हैं वे एक समय व्यापार और कारीगरी के भिन्न भिन्न संघ थे। और इन्ही संघों का रूपांतर भिन्न भिन्न जातियों में हुआ। इस मत का स्वीकार कोई कोई विद्वान करते हैं सो सच

प्रतीत होता है। पहले लुहार, बढई, तमेरा, कुम्हार, नाई आदि भिन्न भिन्न व्यवसाय वालों ने अपने अपने संघ बनाए। अपनी कारीगरी की खूबियां दूसरों को मालूम न होवें इसलिये वे दूसरों को अपने में शामिल न करते थे। इस लिये ये जातियां बनीं। उसी प्रकार अन्य लोगों को जो इन में शामिल न हो सके अलग रहनाही पडा। इन संघ वालों को राजा के कानून का सहारा था। और ब्राह्मणों की सहानुभूति थी, पर इस प्रकार का एक भी सहारा अनार्यों को न होने के कारण उनकी शारीरिक और मानसिक अवनति ही होती गई। इतनाही नहीं उन्हें नागरिकत्वके कुछ हक हैं यह भावनाही उनके दिलसे विलकुल नष्ट हो गई। यदि यह देखना हो कि वंशपरंपरा की गुलामी से कैसी अवनति होती है तो इन अंत्यजों की ओर देखिये।

(१०) इस प्रकार ब्राह्मणों से योगमद के कारण, क्षत्रियों से जेतृत्व के मद के कारण और वैश्यों से व्यवसाय के संघ बनाने के कारण इन असहाय लोगोंका बहिष्कार किया गया। ब्राह्मणों का बहिष्कार केवल इन्ही लोगों के लिए नहीं किन्तु क्षत्रि और वैश्यों पर भी अंशतः हुआ। छूत अछूत और शुद्ध अशुद्ध के विचार के कारण अब्राह्मणने किया हुआ स्पर्श भी धार्मिक ब्राह्मण बर्दाश्त नहीं कर सकता। परन्तु अनार्यों परका बहिष्कार त्रैवर्णियों ने किया हुआ संयुक्त बहिष्कार था। इसलिये यह केवल ब्राह्मणोंने किया हुआ बहिष्कार उतना तीव्र न होने पाया।

प्राचीनकाल में सब लोगों के अधिकार समान माने जाते थे। इस समानताके युगमेंसे हमलोग योगयुग में पहुंचे और उस समय विषमता कैसे उत्पन्न हुई यह देखा। जो कल्पना उत्पन्न

होती है वह परिणाम किये विना नहीं रहती। इस सिद्धांत के अनुसार इस भेद अभेद और छूत अछूत के विचारने भी सबके अंतःकरण पर असर अवश्यमेव किया। आगे चलकर जब रटंत विद्या का युग आया तब मंत्र के उपदेश की ओर से ध्यान उचटने लगा। और लोगों को मालूम होने लगा कि उनके पठन में ही विलक्षण सामर्थ्य है। अज्ञानता के युग में युक्तिवाद और समताभाव नहीं रहता। प्रचलित रीतिरस्म और समझ अधिकाधिक दृढ होते हैं। कालके अनुसार उन पर संस्कार न होने से परिस्थितिके अनुसार वे बढते ही जाते हैं। इसीप्रकार छूत अछूत के आचार विचार और जातिभेद 'रटाई' के युग में बुरी तरह से बढे। समाज तितर बितर हो गया और लोगसंख्या में बहुत होने पर भी उनमेंसंघशक्ति नहीं रही, संघशक्ति के अभाव से विदेशियों के हम्ले लगातार होते रहे और आखीर में यह देश अंग्रेजोंके अधिकारमें ही गया। अंग्रेजी राजत्व काल में यूरोपके विज्ञानयुगका असर भारतवर्षपर हुआ और तब से रटाई के युग की इति श्री होकर विज्ञान युग का आरंभ हुआ। इस विज्ञान युग में आचार— विचार तर्क की कसौटी पर परखा जाता है और यदि वह योग्य जचा तो उसका स्वीकार किया जाता है। इस प्रकार नवजीवनका आरंभ हुआ है। इस नये युग में प्राचीन जातिभेद, छूत अछूत और समाजके एक अंगके बहिष्कार की जांच हो रही है। इस विज्ञान युग में प्रचलित उदार मतों के कारण भिन्न भिन्न परिस्थिति में भिन्न भिन्न कारणों से उत्पन्न हुए विचार जैसे के वैसें रहेंगे यह संभव नहीं। रोज रोज उनमें हेर फेर हो रहा है और नये संस्कार हो रहे हैं। इस विज्ञान युग में प्रत्येक नेता और कर्मवीर पुरुष का ध्यान इस ओर है कि भिन्न

भिन्न कारणों से उत्पन्न होकर भिन्न भिन्न परिस्थिति में बढा हुआ और अज्ञान के खाद से पुष्ट हुआ यह असमानता का विषवृक्ष जलदी और सब की सहानुभूति से किस प्रकार नष्ट होगा? यह इच्छा यदि सफल होवे तो—

" समानी प्रपा सह वो अन्नभाग ॥ "

अथर्व० ३ । ३० । ६

इस पीछे दिये हुए वैदिक उपदेश की ओर सब लोग पहुंचेंगे और उस समय दोनों बाजूके दो छोर एकत्र मिलने का शुभ योग प्राप्त होगा।

—०—

विषमता वृद्धि के कारण ।

भाग ३ रा ।

(१) छूत अछूत का विचार केवल अंत्यजों की दृष्टि से ही नहीं करना चाहिये । उसका विचार सब लोगों की दृष्टिसे करना आवश्यक है । उसकी व्याप्ति न्यूनाधिक प्रमाण में सर्वत्र है । पहिले भाग में कहाही है कि जातिबंधन और छूत अछूत के विचार तीन कारणों से उत्पन्न हुए हैं । इस भाग में इस बात का विचार करना है कि इस भावों के बढनेके लिये तथा दृढमूल होने के लिये कौनसे कारण हुए । जब कारणों को अच्छी तरह समझ लेंगे तब दोषों को निकालने के लिए क्या करना आवश्यक है, इस के सोचने में सुभीता होगी ।

पीछे कहा गया है कि यह छूत अछूत ब्राह्मणोंने अब्राह्मणोंपर, उच्चवर्णीयोंने नीच वर्ण के लोगोंपर, श्रेष्ठोंने कनिष्ठोंपर, श्वेत पीत – रक्त वर्ण के लोगों ने कृष्ण वर्ण के लोगोंपर, किये हुए बहिष्कार से उत्पन्न हुआ । परंतु यह विचार ज्यों ज्यों बढा त्यों त्यों इस का असर स्ववर्णियों पर भी होने लगा । शत्रूपर हल्ला करने के लिये जिस क्रोध का स्वीकार किया वह अन्त में घरके लोगों की अशांति का कारण हुआ । दूसरों को दूर रखने के लिये जो पद्धति निकाली उसका ऐसा विस्तार हूआ कि जिससे अपनी मंडली भी दूर रखी जाने लगी । जित लोगों को कमजोर करने के हेतु जो नियम बनाए गये उन्होंने जेता लोगों को ही शक्तिहीन करने का काम किया । यह सोचने योग्य बात है कि ऐसा होनेका क्या कारण था ।

(२) पहले एक वर्ण था। वर्णभेद पीछेसे उत्पन्न हुआ। इस अर्थ का महाभारत तथा भागवत का वचन है सो पीछले भाग में बताया ही है। आगे चलकर गीता में बताया है कि गुण और कर्म पर से चार भिन्न वर्ण समझे जाने लगे। यही हाल अन्य शब्दों में आगे उद्धृत किये हुए वाक्यों में है।

भारद्वाज उवाच।

कामः क्रोधो भयं लोभः शोकश्चिता क्षुधा श्रमः ॥
सर्वेषां नः प्रभवति कस्माद् वर्णो विभिद्यते ॥ १ ॥
स्वेदमूत्रं पुरीषाणि श्लेष्मा पित्तं सशोणितम् ॥
तनुः क्षरति सर्वेषां कस्माद् वर्णो विभिद्यते ॥ २ ॥

भृगुरुवाच।

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत् ।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मभिर्वर्णतां गतम् ॥ ३ ॥
कामभोगप्रियास्तीक्ष्णाः क्रोधनाः प्रियसाहसाः ॥
त्यक्तस्वधर्मा रक्तांगास्ते द्विजाः क्षात्रतां गताः॥४॥
गोभ्यो वृत्तिं समास्थाय पीताः कृष्युपजीविनः ॥
स्वधर्मं नानुतिष्ठन्ति ते द्विजा वैश्यतां गताः ॥ ५ ॥
हिंसाऽनृतप्रिया लुब्धाः सर्व कर्मोपजीविनः ॥
कृष्णाः शौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजाः शूद्रतां गताः ॥ ६ ॥
इत्येतैः कर्मभिर्व्यस्ता द्विजा वर्णान्तरं गताः ॥
धर्मो यज्ञक्रिया तेषां नित्यं न प्रतिषिध्यते ॥ ७ ॥
इत्येते चतुरो वर्णा येषां ब्राह्मी सरस्वती ॥
विहिता ब्रह्मणा पूर्वं लोभात् त्वज्ञानतां गताः ॥ ८ ॥

महाभारत शांति० मोक्षधर्म ४२। १८८

'हे भृगुमुनि! काम, क्रोध, लोभ, भय, शोक, चिंता, क्षुधा और श्रम आदि विकार हम सब लोगों में एक से हैं, तब वर्णभेद क्यों मानते हैं? पसीना, मूत्र, पुरीष, कफ, पित्त, रक्त सब के बदन में रहते हैं तब एक वर्ण दूसरे से भिन्न क्यों माना जाता है?'

इस पर भृगु ऋषि बोले:—"(पहले) एक ब्राह्मण वर्ण ही था। इसलिये (इस समय दिखने वाले भिन्न भिन्न) वर्णों में कुछ विशेष भेद नहीं। पहिले पहल ब्रह्मा ने उत्पन्न किये हुए एक ही वर्ण के लोग कर्म के कारण भिन्न भिन्न वर्ण को प्राप्त हुए हैं। जिन ब्राह्मणों का रंग लाल था और जो अपना धर्म छोडकर काम और भोग में आसक्त हुए, जो स्वभाव से क्रोधी, साहसी और उग्र थे वे क्षत्रिय हुए। जिन ब्राह्मणों का पीतवर्ण था और जो स्वधर्म का त्याग कर के गौ पालने और खेती करने लगे वे वैश्य बने। जो ब्राह्मण कृष्णवर्ण थे और जो भ्रष्ट आचार से रहने लगे, जो लोभ में पड कर हिंसा करने लगे जो जीवन निर्वाहके लिए मनमाना काम करने लगे और जिन्होंने सत्य त्याग दिया वे शूद्र हुए। इस प्रकार भिन्न भिन्न कर्मों से भिन्न भिन्न चार वर्ण बने। इस लिये इन चार वर्णों को धर्म और यज्ञ क्रिया करने का निषेध नहीं है। इन वर्णों के लिये ब्राह्मी सरस्वती (वेदविद्या) एकसी है। ब्रह्माने इन्हें इस प्रकार समान स्थिति में उत्पन्न किया है; तिसपर भी ये लोभ के कारण अज्ञानी बने हैं।'

महाभारत में चातुर्वर्ण्य की उत्पत्ति का इस प्रकार वर्णन है। पहले पहल एकही जाति थी। परंतु भिन्न भिन्न गुण कर्म और स्वभाव के कारण चार भिन्न भिन्न वर्ण या जातियां बनीं। जिन के पास विद्या थी, जिनका आचार अच्छा था और जो

उपदेश तथा शिक्षा देते थे, वे ब्राह्मण कहलाये। जो शौर्य से लोगों का संरक्षण करने लगे वे क्षत्रिय कहलाए। जो व्यापार और उद्यम में लगे वे वैश्य कहलाए और जिन में यह योग्यता नहीं थी कि उपदेश, संरक्षण या व्यापार करें, वे शूद्र कहलाए। वास्तव में उनमें कोई भेद नहीं था। यही उपर्युक्त कथन का तात्पर्य है। इस प्रकार लोगों के स्वभाव भेद से चार वर्ण हुए। इस प्रकार के वर्ण होना क्रम प्राप्त है और इस प्रकार के भेद हरएक देश में विद्यमान हैं। केवल अपने ही देश में रूढ़ी के बंधन के कारण वे जन्म-सिद्ध समझे जाते हैं और दूसरे देशों में प्राचीन पद्धति के अनुसार वे लोगों के गुणों और कर्मों पर से माने जाते हैं। मनु महाराजने भी कहा है कि वर्ण चार ही हैं-

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्त्रयो वर्णा द्विजातयः॥
चतुर्थ एकजातिस्तु शूद्रो नास्ति तु पंचमः ॥ ४ ॥

मनु. अ. १०

"द्विजों में ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीन जातियां हैं और शूद्र अलग जाति है। पांचवी जाति नहीं है।" चंडालों अथवा अंत्यजों की जो पांचवी जाति मानी जाती है वह ठीक नहीं। उनको ऊपर के चार वर्णों में ही शामिल करना चाहिये। क्यों कि यह पंचम वर्ण ऊपर कहे हुए चार वर्णों के संकर से हुआ है जैसा कि आगे के श्लोक में बताया गया है-

शूद्रादायोगवः क्षत्ता चंडालश्चाधमो नृणाम् ।
वैश्यराजन्यविप्रासु जायंते वर्णसंकराः ॥ १२ ॥

-मनु० अ० १०

"शूद्र पुरुष का संबंध वैश्य, क्षत्रिय या ब्राह्मण स्त्री से होनेसे जो संतती होगी उसे क्रमसे आयोगव, क्षत्ता और चंडाल कहते हैं।"

शूद्र पुरुष और ब्राह्मण स्त्री से जो पैदा होते हैं उन्हें चंडाल कहते हैं। इन्हें अछूत समझते हैं और अलग रखते हैं। किसी समय कुछ स्त्री पुरुषों ने अपराध किया था। इस लिये उनकी संतति को चंद्र सूर्य संसार में जब तक विद्यमान रहेंगे तब तक कडी और मनुष्योंके लिये अनुचित सजा देना किसी को पसंद न होगा। और एक प्रश्न इसमें विचार करने योग्य है। शूद्र और ब्राह्मण से जो संतान होगी वह शूद्र से तो उंची ही होनी चाहिये। खैर, इस प्रश्न को अभी छोड देंगे। तात्पर्य यह निकला कि वर्ण चार ही हैं और जो पांचवी जाति लोगोंने मान ली है वह अलग जाति नहीं है। इन चार वर्णोंके और भी उपभेद किये गये हैं जो एक दूसरे से थोडे बहुत उच्च नीच समझे जाते हैं। यदि ऐसा कहा जाय कि हरएक व्यवसाय की एक एक जाति बन गई है तो अनुचित न होगा। यह असंभव है कि ये भिन्न भिन्न जातियां परमेश्वरने संसारकी उत्पत्ति के समय ही उत्पन्न कीं। दुर्जनतोषन्यायसे थोडे समय के लिये यह बात भी मान ली कि ईश्वरने चार मुख्य वर्ण उत्पन्न किये। तब भी यह कहना तर्क शुद्ध नहीं मालूम होती कि चोर, डाकु आदि जातियां जैसी आज हैं वैसी ही ईश्वरने उत्पन्न की होंगी। इसलिये जातियोंकी उत्पत्ति के विषय में महाभारत में जैसा कहा है कि उद्योग की भिन्नता से ही भिन्न भिन्न जातियां बनीं वही योग्य है। यदि इस बात को मान लेवें तो वह व्यवसाय जिसके कारण जाति को नाम प्राप्त हुआ है छोड देने पर भी वही जाति कायम कैसे

रहती हैं ? व्यवसाय के कारण जो भेद उत्पन्न हुआ है वह भेद व्यवसाय छोड़ देने पर निकल जाना चाहिये। यह भेद बना रहता है इसका कारण रूढी है। यह स्पष्ट है कि पहले ऐसा नहीं होता था। अन्त में निश्चय यह हुआ कि मुख्य चार वर्ण और इसके उपभेद व्यवसाय के कारण बने हैं।

(३) पहले पहल जो चार वर्ण थे उनमें व्यवसाय के कारण बने हुए भेद मिल गये। साथ ही प्रांतीयताके कारण बने हुए भेदभी मिल गये। इस प्रकार अनेकानेक जातियां बनी। ब्राह्मणोंका ही उदाहरण देखिये। मूल आर्यों में ब्राह्मण नामक एक ही वर्ग था। उसमें कुछ समयबाद, ऋग्वेदी, यजुर्वेदी, सामवेदी और अथर्ववेदी जैसे भेद हुए। उनमें अनेक शाखाएँ और अनेक गोत्र थे। तिलभर भी अछूत और छूत का प्रचार नहीं था। परंतु पुराने ढंग के गुजराथी, बंगाली, महाराष्ट्रीय, मद्रास और पंजाबके ब्राह्मणोंको यदि एकत्रित किया जाय तो मालूम होगा कि एक के हाथ का पानी दूसरे के कामका नहीं है। एक दूसरेकी पंगत में नहीं बैठता। अथवा एक का पकाया भोजन दूसरे के काम का नहीं होता। एक वेदवाले और एकही गोत्र के ब्राह्मणों में केवल प्रान्तों के भेद के कराण इतनी छूत अछूत है। तब वह दूसरी जातियों के विषय में और भी अधिक क्यों न होगी ? मद्रास की परया जाति वालों का बनाया हुआ भोजन महाराष्ट्र की महार जाती वाले न खा सकेंगे, और महारों का बना हुआ भोजन बंगाल के नामशूद्र न खा सकेंगे। व्यवसायों के कारण बनी हुई भिन्न जातियों में प्रांतों की भिन्नतासे इतनी अधिक अछूत कैसी हुई यह एक गहन प्रश्न है। पर उसका एक कारण हो सकता है। वह कारण है भिन्न भिन्न प्रांतों के भिन्न

भिन्न राज्य, वहां की भिन्न भिन्न भाषाएं और वहां रहने वालों के भिन्न भिन्न आचार। इन राज्यों में आवागमन की कठिनाई होने के कारण एक राज्यके लोगों को दूसरे राज्य के लोगों की भाषा और आचार का पता नहीं चलता था। इस लिये उनमें भिन्नता उत्पन्न होना स्वाभाविक जान पड़ता है।

ऊपर बताया गया है कि व्यवसाय के कारण भिन्न भिन्न जातियां कैसे बनी और भिन्न भिन्न प्रान्तों की विभिन्न भाषाओं से उन में और भी अधिक भेद कैसे हुए। अब आहार के कारण अर्थात् मांसाहार और शाकाहार के कारण और भी अधिक भिन्नता कैसे हुई बताने की आवश्यकता नहीं है। यह भेद अब्राह्मणों में नहीं है इस लिये इसका विवरण केवलब्राह्मणोंसे संबंध रखता है। यह बात यहां केवल इसी लिये बताई है कि सारस्वत ब्राह्मणों का बनाया हुआ भोजन द्रविड ब्राह्मण नहीं खाते। इन में यद्यपि शाक्त, त्रिकर्मी षट्कर्मी आदि कई भेद हैं तथापि उन में शाकाहार और मांसाहार को ही प्रधानता है।

इन सब भेदों में धर्म पंथों के कारण और भी भेद जोड़े गये। शैव और वैष्णव लोगों के आपसी झगड़े अब नहीं होते; और यदि होते भी हैं तो बहुत कम। पर अब भी दक्षिण के त्रिपुंड्र ब्राह्मण भोजन पर किसी दूसरे की नजर पड़े तो इतने ही से वह भोजनके उसके खाने के लिये अयोग्य हो जाता है। उन लोगों का मत है कि जो भोजन पकाया जा रहा है उसे अन्य जाति के लोग तो देख ही नहीं सकते, परन्तु स्वजातीय होने पर भी भिन्न मत के अनुयायी तक उसे नहीं देख सकते। छूत अछूत का ख्याल करने वाले के विचार से स्पर्श होने पर ही अपवित्रता होती है। पर इन लोगों की अपवित्रता के

लिये देखना ही काफी कारण है। इस कल्पना का बढाचढा रूप कान्यकुब्जों का चौका है। इनमें जो अधिक धर्मशील होते हैं वे अपनी स्त्री के हाथ का भी भोजन अपवित्र समझते हैं। कुटुम्ब में जितने लोग होंगे उतने ही चूल्हे इन्हे आवश्यक होते हैं। यदि सारा संसार स्वयंपाकी बन जावे तो उसकी प्रगति अवश्यमेव रुक जावेगी। सब समय यदि रसोई बनाने ही में खर्च हो तो और काम कब किया जाय? 'नौ कनोजियां में दस चूल्हे' या 'एक का पकाया हुआ भोजन दूसरा देख लेवे तो वह अपवित्र हो जाता है' आदि विचार छूत अछूत का अतिरेक बताते हैं। यदि पर-मत- असहिष्णुता का उदाहरण देखना हो तो इन लोगों की ओर देखिये।

(१) असली चार वर्ण, (२) व्यवसाय के कारण बने हुए भिन्न भिन्न संघ, (३) प्रान्तों के कारण बने हुए भेद, (४) भाषा और धर्मपंथ के कारण बने हुए भेद (५) शाकाहार और मांसाहार के कारण पडी हुई फूट, आदि अनेक कारणों का जातिभेद और छूत अछूत के कारणों से संबंध है। प्रान्तों में आवागमन न होनेसे लोग बहुधा अपना जीवन अपने ही गांव में व्यतीत करते थे।

ऐसी दशा में इस विशाल देशके हमारे देशबांधवों के प्रति सहानुभूति कैसे जागृत होगी? आपस में मिलने जुलने के अभाव से परस्पर भिन्नता बढेगी। इस में आश्चर्य ही क्या? इस मध्यकाल में भारतवर्ष में अनेक राजाओंने राज्य किया। परन्तु ऐसा कोई उपाय न किया गया कि जिससे सब लोगों के ज्ञान की वृद्धि हो। जो ज्ञान परम्परासे लोगों को मिलता था उसी में वे लोग संतोष मानते थे। ज्ञान प्रसार सार्वत्रिक

नहीं था, यात्राभी लोग अधिक नहीं करते थे। इस से उन में 'कूपमण्डूक' की तरह मनकी संकुचित वृत्ति बढी। इसी संकुचित वृत्ति के कारण भिन्न भिन्न भेद उत्पन्न हुए और उनकी बाढ होती गई। देश में आवागमन के साधन नहीं थे। इस से देश ही में एक स्थान से दूसरे स्थानको लोग जाते नहीं थे। परदेश जाना तो शास्त्रों में निषिद्ध बताया था। इस से विदेश में जो उन्नति और प्रगति होती थी उस के इस देश में पहुंचने के लिये कोई साधन नहीं था। इतिहास का सिद्धान्त है कि यदि किसी देश में परकीयों का राज्य हो जावे और सब लोगों को शासकों का डर रहे, तो वहां के लोगों के भेद के विचार लुप्त हो जाते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार, भारतवर्ष पर जब मुसलमानों ने आक्रमण किया उस समय सब हिन्दुओं में एकता होनी चाहिए थी। परन्तु देश में भिन्न भिन्न प्रान्तीय राजविभाग थे। इससे एकराष्ट्रीयत्व की भावना उत्पन्न न हो सकी। हरएक प्रान्त में अपने अपने छोटे से राज्य का संकुचित अभिमान था। इस से परकीयों का सामान्य डर होने पर भी सब लोग एकत्रित न हो सके। भेद भाव के विचार किसी प्रकार से कम न हुए किन्तु दिन प्रतिदिन वे बढते ही गये। ऊपर के कारणों में से एक कारण भी अवनति करने में समर्थ है। तब उन सब कारणों के समुच्चय से समाज की संघशक्ति पर आघात होने से वह नष्ट हुई इस में आश्चर्य ही क्या?

यदि मनुष्य के मन में महत्ताका विचार, प्रथम ईश्वर फिर मनुष्यसमाज, फिर स्वराष्ट्र और अन्त में व्यक्ति इस क्रमसे हो, तो मानवी समाज की उन्नति का ही एक मात्र परमोच्च उद्देश उस को दृष्टि के सन्मुख हमेशा रहता है और उसी ध्येय के

अनुकूल राष्ट्रीय और व्यक्तिगत संबंध की भावनाओं का नियन्त्रण होता है। परन्तु यदि सब मनुष्यसमाज की एकता का विचार आचरण में नहीं दिखा, एकराष्ट्रीयत्व की कल्पना का उदय हृदय में हुआ ही नहीं और एक परमेश्वर के पितृत्व से स्पष्ट होने वाला विश्वकुटुंबित्व यदि केवल वचन ही में रहा, तो मनुष्य को स्वार्थके सिवा क्या प्रिय होगा ? हमारे धर्म में विश्वबंधुत्व और सर्वभूतहित का विचार है जरूर, पर वह जब व्यवहार के क्षेत्र में आवेगा तभी कार्य करके दिखावेगा ! वक्तव्य में विश्वबंधुत्व का उल्लेख जोर शोर से होता है परंतु व्यवहार में अंत्यज अछूत रहते हैं। इसका कारण यही है कि जहां व्यक्ति की भावनाएं मानव-समाज की उन्नति की भावनाओं के सामने तुच्छ समझनी चाहिए थीं वहां समाजके विषयके कर्तव्य को व्यक्ति के स्वार्थने दबा दिया !! ईश्वरकी दृष्टिमें सब मनुष्य एकसे हैं इस धार्मिक उच्च विचार का व्यवहार में उपयोग, कुछ साधु संतों को छोडकर और कोई नहीं करता था। यह भी जातिभेद की वृद्धि के प्रबल कारणों में से एक है। इस उच्च कल्पना के अनुसार जो आचरण करना चाहिए उसका अभाव ही अंत्यजों की अस्पृश्यता और उनका बहिष्कार कायम रखने का कराण है। अनेक साधु, संत और महात्माओंको यह समता का विचार पसंद था और उन्होंने उसका प्रचार भी जोर से करके इस छूत अछूत पर हथियार चलाया। परन्तु साधारण जनता में अज्ञानता का बल अधिक होनेसे साधुसंतोंके कार्यों का जैसा इष्ट परिणाम होना चाहिये था वैसा न हुआ।

(४) इस भेद के विचार को बढाने में मुसलमान और ईसाई धर्मियों ने अपने अपने धर्म का प्रचार करके

मदद की है। ये दोनों धर्म असल में एक ही जाति के पक्षपाति है पर हिन्दुस्थान मे आने पर हिन्दुओं के जाति-भेद का उनपर असर पडा। हिन्दुस्थान के मुसलमानों में अश्राफ (श्रेष्ठ), अज्लाफ (मध्यम) तथा अर्जाल (हीन) ऐसी तीन भिन्न भिन्न जातियां मानी जाती हैं। और इन में से अर्जाल लोग अछूत समझे जाते हैं। संभवतः ये लोग धर्मांतर किये हुए नीच हिन्दु होंगे। आश्चर्य यह कि उनकी अछूत अन्य धर्म का स्वीकार करनेपर भी कायम रही। हिन्दुस्थान के बाहर जो मुसलमान हैं उन में अछूत मुसलमान नहीं हैं। तब स्पष्ट है कि यह अछूत हिन्दुओं के निकट रहनेका दुष्परिणाम है। ईसाई धर्म भी एक ही ईश्वर को माननेवाला और विश्वकुटुंबका कट्टर पक्षपाती है। पर उसे भी दक्षिण में हार माननी पडी। उत्तर भारत के ईसाइयों में जातिभेद नहीं है पर दक्षिण भारत के ईसाइयों में वैसा ही जातिभेद और छूत अछूत मानते हैं जैसी कि हिन्दुओं में। दक्षिणके कोई कोई गिरजाघरों में भिन्न भिन्न जातियों के लिये भिन्न भिन्न स्थान निश्चित रहते हैं!! एक जाति का ईसाई दूसरी जाति के ईसाई को स्पर्श नहीं करता, उसकी बनी रोटी नहीं खाता और उसकी पंगत में भोजन करने नहीं बैठता। वे अब भी हिन्दुओं की जातियोंके नामों का उपयोग करते हैं। मुदलियार ईसाई, अय्यंगार ईसाई, नायडू ईसाई आदि कई जातियां उनमें हैं; जिनमें धर्मांतरित होते हुए भी रोटी और बेटी का व्यवहार नहीं होता। हिन्दुओं के जातिभेद का प्रभाव इतना जबरदस्त है। ये लोग दक्षिण में जातिभेदवाले ईसाई (Caste christians) कहलाते हैं। इसी प्रकार के लोग कोंकण में भी कहीं कहीं पाये जाते

है। महाराष्ट्रीय लोगों में 'कोंकणस्थ' और "देशस्थ" उपभेद हैं। इन दोनों में बेटी व्यवहार नहीं होता। इसी प्रकार 'कोंकणस्थ ईसाई' का विवाह 'देशस्थ ईसाई' से नहीं हो सकता। बलवान ईसाई धर्म को भी इस जातिभेदसे हार माननी पडी। प्रथम यवन और म्लेंच्छ अस्पृश्य समझे जाते थे। परन्तु उन लोगोंका राज्य हो जाने पर उनके स्पर्श की अपवित्रता कम होती गई। मुसलमानों का राज्य बढ जाने पर " न वदेत् यावनीं भाषां " सरीखे शास्त्रवचन अलग रख दिये गये और मुसलमानों का स्पर्श भी सहनीय होने लगा। वर्तमान समय में ईसाइयों का राज्य होने से साधारण व्यवहार में ईसाईयों का स्पर्श सहनीय हो गया है। इस प्रकार जिन लोगों ने अपना राज्य जमाया वे स्पर्श करने योग्य समझे गये। इतना ही नहीं, चमार, धेढ आदि लोग जब तक हिन्दु रहते हैं तब तक अस्पृश्य समझे जाते हैं किन्तु मुसलमानी अथवा ईसाई धर्म का स्वीकार करने पर वेही लोग छूत बन जाते हैं। इन दो धर्मों में जो पवित्र बनाने का गुण उत्पन्न हुआ है उसका भी कारण यही है कि उन लोगों का राज्य था और है। राजलक्ष्मी का माहात्म्य ऐसा ही होता है। धेड और चमारों का राज्य हो जावे तो वे भी छूत बनेंगे। इतना ही केवल नहीं बरन वे आदरणीय भी समझे जावेंगे। अज्ञान से उत्पन्न होनेवाला अछूत का भाव लक्ष्मी के निकट होनेसे निकल जाता है। किसी भी कारण से क्यों न हो ईसाई धर्मने हिन्दुओं की अछूत जातियों का बहिष्कार अंशतः कम किया है और मुसलमानी धर्म की भी इस काम में मदद हुई है। धेड और चमार हिन्दुधर्म में जब तक रहेंगे तभी तक अछूत रहेंगे परंतु वेही दूसरे धर्म के होते

ही छूत कैसे बन जाते हैं इस के लिये किसी भी धर्मपुस्तक में आधार नहीं मिलेगा। इस बात का कारण या रूढी हो या बाहरी दबाव हो।

यहां तक हम देख चुके हैं कि ईसाई और इस्लाम धर्मोंने अंत्यजों के दुःख कहां तक दूर किये और छूत अछूत कहां तक बढाई। अब मालूम हो गया होगा कि जातिभेद के बढने के कौन कौन से कारण हुए और उन कारणों से हिन्दू-समाज विभिन्न और संघशक्तिहीन कैसे हुआ। इस जातिभेद और छूत अछूत के कारणों का निदान पूर्ण रीतिसे ज्ञात हो जाने से उन को दूर करने की उपाययोजना कैसी होनी चाहिये यह समझने में सुविधा होगी।

वेदमन्त्रोंका उपदेश।

भाग ४ था

(१) छूत अछूत का विचार धीरे धीरे किस प्रकार उत्पन्न हुआ और उसका वर्तमान कालमें कौनसा रूप है इत्यादि बातें अब तक देखी गई। अब देखना चाहिये कि इसके प्रचार से और उसको कडी रीति से जारी रखनेसे कौनसी हानि या लाभ हुआ है, हो रहा है तथा होने की संभावना है। परन्तु इस विचार के पूर्व हमें देखना चाहिये कि आर्यों के प्राचीनतम वेद-ग्रंथों में क्या उपदेश है, वहां जनता और चारों वर्णों के विषय में कौनसी आज्ञाएं हैं। इससे यह जानने में सुविधा होगी कि छूत अछूत-अर्थात् कुछ मनुष्यों को अपने निकट खींचना तथा औरों को दूर रखना-के विचार वेद में हैं अथवा वे आधुनिक हैं। इसीका विचार प्रथम करेंगे। पहले यह कि सामान्य जनता के लिये वेदों में कौनसा उपदेश है। तत्पश्चात् वर्णों को दिया हुआ उपदेश क्रमसे देखा जावेगा। "समानी प्रपा०" आदि मन्त्र पहले दिया हुआ है। इस मन्त्र से ज्ञात होता है कि वेदों के अनुसार मनुष्य मात्र को एकत्र अन्नग्रहण और जलपान करने में कोई आपत्ति नहीं।

(१) समानी प्रपा (पानी पीने का स्थान समान) और (२) वो अन्नभागः सह भवतु (तुम्हारा अन्नसेवन एकत्र होवे) इन दो मन्त्रों में बतलाई हुई वेदों की आज्ञाओंसे वर्तमान छूत अछूत के युग में लोगों को बहुत शिक्षा प्राप्त हो सकती है। खान पान की एकताका प्रश्न इस प्रकार हल हुआ। उसी प्रकार—

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम् ॥
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते ॥ २ ॥
ऋग्वेद. मं० १० । १९१ ॥

" एक स्थानमें सम्मिलित हो, संवाद करो, तुम्हारे मन को एक करो और जिस प्रकार प्राचीन काल के विद्वान अपने नियत कर्तव्य के लिये एकत्रित होते थे (उसी प्रकार तुम भी एकत्र हो जाओ)। इस मंत्र में किसी भी जातिविशेष का उल्लेख विशेष रीतिसे न कर सब लोगों को सामान्य रूप से आज्ञा की गई है। यदि वेदों को मान्य होता कि कोई अमुक वर्ण के लोग अछूत हैं तो ऊपर दिये हुए मंत्र को अपवाद मन्त्र भी मिलते, परन्तु चारों वेदों में इस मंत्र को अपवाद नहीं है। मनुष्यों की उन्नति के लिये दो साधन हैं (१) एकत्र सम्मिलित होना और (२) वादविवाद और शंका समाधान करना। ये दो साधन ऊपरके मन्त्र में प्रथम दिये गये हैं। उस में भी 'एकत्र सम्मिलित हो' की आज्ञा सबसे पहले हैं। परमेश्वर की सामाजिक उपासना, संस्कार और संवाद एकत्र सम्मिलित होने पर ही संभव हैं। जिन लोगोंका सम्मिलित होना संभव नहीं उन लोगों को परस्पर ज्ञान की प्राप्ति होना असंभव है। अस्पृश्य होने के कारण जिनका सभा में सम्मिलित होना असंभव है वे अंत्यज दूसरे हिन्दुओं का सुधार हो जाने पर भी असंस्कृत रहे। इसके कारण ऊपर के मंत्र से सरलता से ज्ञात हो सकते हैं। ऊपर के मंत्रोंकी चारों आज्ञाएं सब के लिये समान हैं इस के आगे-

समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्॥३॥
ऋ० मं० १० । १९१ ॥

"सब का मंत्र समान, सबकी सभा समान, सब का मन समान और इन सबका चित्त भी समान रहे।" जप करने के लिये सब को एक ही मन्त्र है, इसी प्रकार सभामें आने का सब का समान हक है। यह मन्त्र इन्ही दो प्रधान बातोंको मुख्यतः बतलाता है। यह कहना अनुचित नहीं कि पहले मंत्र के 'संगच्छध्वम्' पद का स्पष्टीकरण 'समानी समितिः' पद में किया गया है। सम्मिलित होने की आज्ञा देने के पश्चात् सभामें एकत्र होने का सबका समान हक क्रमप्राप्त ही है। यह हक सब को समान है और यह बात स्पष्टतया ऊपर के श्लोक में बतलाई गई है। एकत्र हो कर सार्वजनिक उपासना के समय सबके समान हकका उल्लेख पहले आचुका है। उसी को पुष्टी देने वाला आगे का मंत्र है-

विश्वस्य केतुर्भुवनस्य गर्भ आरोदसी अपृणाज्जायमानः ॥
वीडुं चिदद्रिमभिनत् परायञ्जना यदग्निमजयन्त पञ्च ॥३॥
ऋ. मं १०।४५। यजु. अ० १२

"उस अग्निका (परमेश्वरका) जो विश्व का झंडा है, भुवनों का गर्भ (उत्पादक) है, जो द्युलोक तथा पृथ्वी लोक इन दोनोंमें भरा हुआ है इसी प्रकार जो मेघ और पर्वत का भेद कर डालता है। पांचों प्रकार के लोग यजन करते हैं।" इस में 'पंच जना अग्नि अजयन्त।' वाक्य है। इस वाक्य से बोध होता है कि पांचों लोगों को चाहिए कि वे अग्निमें हवन करें अथवा पांचों लोगों को अग्नि में हवन करने का अधिकार है। ".नाभि इव आराः सम्यञ्चो अग्निं सपर्यत" (नाभी में जिस प्रकार आरे रहते हैं, उसी प्रकार एकत्र होकर अग्निकी पूजा करो)। अथर्व वेद की इस आज्ञा से इस मन्त्र का मिलान करनेसे इसका अर्थ और भी अधिक स्पष्ट दिखेगा। उसी प्रकार-

पञ्च जना मम होत्रं जुषन्ताम् ॥ १ ॥

और—

यज्ञियासः पञ्चजना मम होत्रं जुषध्वम्॥ ४ ॥

ऋ० १०।५३

"यजन करने वाले पंचजन मेरे होत्र का–यज्ञ का–सेवन करें।" इस मन्त्र में स्पष्टरूपसे बताया है कि पांचों प्रकार के लोगों को यज्ञ में जानेका तथा अग्नि में हवन करने का अधिकार है।

त्वामग्ने मानुषीरीळते विशः —ऋ० ५।८।३
अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मानुषो विशः ॥ऋ० ६।१४।२
मन्द्रं होतारमुशिजा यविष्ठमाग्नम्
विश ईळते अध्वरेषु। ऋ० ७।१०।५

"हे अग्ने! मनुष्य तुम्हारे स्तुति करते हैं।" यह बात निश्चित होती है कि मनुष्य जातिके सब लोग अग्नि की स्तुति और अग्निमें हवन करते हैं। अब प्रश्न यह हो सकता है कि ये पंचजन कौन हैं? उसके लिये लम्बी यात्रा न करना होगी। "पंचजन" शब्द का अर्थ है 'जनता' मनुष्य मात्र (Man, Mankind) स्वर्गवासी वामन शिवराम आपटे के संस्कृत कोश में यह अर्थ दिया है। उसी जगह यह भी बताया है कि ये लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद हैं। (The four primary castes of Hindus with the Nishadas or Barbarians as the fifth) ब्रह्मसूत्र (१।४।११।१३) शारीर भाष्य में भी इसी प्रकार स्पष्टीकरण है। चतुर्वेद भाष्यकार सायणाचार्य अपने भाष्य में कई स्थानों में 'पंचजन' का अर्थ मनुष्य समाज या ऊपर बताये हुए पांच प्रकार के लोग करते हैं। तब 'पंच जनों ने एकत्र सम्मिलित होकर इस अग्नि में हवन करना चाहिये' का अर्थ होता है कि नषादों ने भी हवन करना चाहिये।

(१) पंच जनाः, (२) पंच मानुषाः, (३) पंच कृष्टयः, आदि प्रयोग वेद में कई स्थानों में आते हैं। और उसका अर्थ सब लोगोंके मिलने से होने वाली जनता ऐसाही होता है।

यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पंच मानुषाँ अनु॥
नृम्णं तद् धत्तमश्विना॥ अथर्व० २०।१३९२॥

"जो सुख अंतरिक्ष में और द्युलोक में है वही सुख, अथवा धन, हे अश्विनौ, तुम पांच प्रकार के मनुष्यों (जनता) के लिये धारण करो। इसी प्रकार—

इमा याः पञ्च प्रदिशो मानवीः पञ्च कृष्टयः॥
वृष्टे शापं नदीरिव इह स्फातिं समावहन्॥ ३॥
अथर्व० ३।२४।३

"ये पांच प्रदिशाएं और पांच प्रकार के मनुष्य वर्षा के कारण जिस प्रकार नदी बढती है, उसी प्रकार उन्नति और सुस्थिति को इसी लोक में प्राप्त करें।"

इस मन्त्र में 'पंचकृष्टि' और 'पंच मानव' का अर्थ 'जनता या मनुष्य समाज' है। इन दोनों मन्त्रों में यह इच्छा प्रदर्शित की है कि जनताकी उन्नति होवे और सब मनुष्य सुखी हों। इस प्रकार कुल जनता की उन्नति का ध्येय वेदों ने लोगों के सन्मुख रखा है। चारों वेदों में इस प्रकार का भाव कहीं भी नहीं पाया जाता कि अमुक लोगों की उन्नति हो और अमुक लोग हमेशाके लिये दास्यत्व में रहें। सब लोगों की समुच्चय से उन्नति होवे इसी अर्थ की प्रार्थना और इसी प्रकार की आकांक्षा सैकडों स्थानों में स्पष्ट शब्दों में आई हुई है। पहली आज्ञा तथा "(१) संगच्छध्वम्, (२) समानी समितिः, (३) पंचजना होत्रं जुष-

ष्वम्" आज्ञाओं को देखें तो कहना होगा कि एक वर्ग को अछूत समझ कर दूर रखने का भाव वैदिक नहीं है; वह निरा अवैदिक है। यह बात असम्भव प्रतीत होती है कि निषादों का भी संग्रह करनेवाला वेद और उसकी आज्ञाएं (ब्राह्मणी और शूद्र से उत्पन्न होने वाले) चंडाल को संसार के अन्ततक पूर्ण रीति से बहिष्कृत करेंगी और सहवास से होनेवाली उन्नति से अलग रखेंगी। उसी प्रकारः--

विशे जनाय महि शर्म यच्छतम्॥
तैत्तिरीय सं० २।५।१२॥

"मनुष्य मात्रको सुख देओ" यही आज्ञा है। मनुष्यमात्र को जो सुख देना है वह उसे शहर में रहने को स्थान न देकर, कपडालत्ता, बर्तन, विद्यादान आदि न देकर सदा के लिये बहिष्कृत रख कर क्या दे सकेंगे? प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि वह इसका विचार करे। मनुष्य मात्र को सुख तभी दे सकते हैं जब उन्नति के सब साधन सब लोगों के लिये खुले रखकर सब लोगों के साथ समानता का बर्ताव किया जावे। वेद की आज्ञा इस प्रकार सब के लिये समान है, उसमें पक्षपात नहीं है। वेद का आशय है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, और निषाद (जंगली) पांच वर्ग के लोग— अर्थात् विद्वान, शूद्र, व्यापारी, नोकर तथा जंगल में रहने वाले लोग— एकत्र सम्मिलित हों, शंकाओं का साधन कर ज्ञान प्राप्त करें और अपनी उन्नति करें।

(३) पंचायत की प्रथा प्राचीन काल से आर्यावर्त में प्रचलित है। उसमें इन पांचों प्रकार के लोगों के प्रतिनिधि रहते थे और इसी लिये उसका नाम 'पंच' या 'पंचायत' है।

जिस सभा में विचार के लिये पांचों वर्ग के लोग सम्मिलित होते हैं वह (पंच+आयत) पंचायत है। वे पंच जन कौन हैं ऊपर कहा गया है। तब यदि ऐसा कहें कि उसमें निषाद वर्ग के प्रतिनिधि रहते थे तो अनुचित न होगा। अपने हक और अपने सुख-दुःखों का फैसला करने के लिये सब लोग पंचायत में सम्मिलित होते होंगे। कोई भी व्यक्ति इस बात को मान लेगा कि ऐसा ही होना न्याय्य था। वेदों के मंत्रों की ओर ध्यान देकर कहना ही पडता है कि पांचों प्रकार के लोग मिल जुल कर बर्ताव करते थे। दंड देने के समय भी जातिभेद के कारण किसीपर ज़ादती नहीं होती थी। देखियेः-

सं वो मनांसि सं व्रता समाकूतिर्नमामसि ॥
अमी ये विव्रता स्थन तान् वः सं नमयामसि ॥१॥
अथर्व० ६।९४॥

'हम तुम्हारे मन, तुम्हारे कार्य और तुम्हारी आकांक्षाएं एक करते हैं; और तुम लोगों में जो दुष्कृत्य (विरुद्ध कार्य)करनेवाले हैं उन्हें भी हम एक करते हैं।' इस मन्त्र में कहा गया है कि दुष्कृति करने वाले को भी सुसंस्कारसे सुसंकृत बनाकर एक बनाओ। "किसी मनुष्यका जन्म चंडाल कुल में वा घेडके कुल में हुआ हो तो उसे गांव के बाहर भगा दो, उसे अच्छे वस्त्रादि अच्छे वर्तन आदि न लेने दो, उन्हें रात्रि के समय गांवमें आनेभी न दो, उन्हें स्पर्श न करो, उनकी परछाई के पास भी खडे न हो, उन्हें द्रव्य संग्रह न करने दो," इस प्रकार की आज्ञाएं मनुस्मृति आदि ग्रंथों में (म० स्मृ० अ० १०) दीखतीं हैं; पर इस प्रकार की अत्याचारी आज्ञाएं वेदमें नहीं हैं। वेदकी

आज्ञा है कि जो दुष्ट काम करने वाले हैं उन्ही को दण्ड दो औरों को नहीं। वेद की आज्ञा है कि किसी भी कुल का मनुष्य यदि कुकर्म करे तो उसे दण्डनीय समझना चाहिये। परन्तु स्मृति का कहना है कि चण्डाल लोग दुष्ट कार्य करें वा न करें उन्हें हम देश निकाले का दण्ड वंशपरंपराके लिये देते हैं !!! अंत्यजों के कुल में जिनका जन्म है वे सदाचारी भी हों तब भी हम उन्हें गांव में न रहने देंगे। स्मृति की यह आज्ञा अन्याय की, क्रूरता की, जादती की है तथा मनुष्यत्व को उचित नहीं है; इसी प्रकार वह वेद के विरुद्ध है अतएव त्याज्य है।

मा गृधः कस्य स्वित् धनम्।

—यजु० अ० ४० । १

वेदकी आज्ञा है कि 'किसी के भी धन का अपहार मत कर।' न्याय से धन उपार्जन कर। उसे अपने पास रखने का हर एक व्यक्ति को समान हक है और यह हक वेद ने सब को समानता से दिया है। परन्तु चंडालोंको चाहिये कि वे धनसंग्रह न करें। गधे ही उन का धन है, "सामर्थ्य रहने पर भी शूद्र को धनसंचय नहीं करना चाहिये क्यों कि यदि वह द्रव्यसंग्रह करके धनवान हुआ तो द्विजों को बाधा करेगा (मनु० १०।१२९)"। इस प्रकार की क्रूर और अमानुष आज्ञाएं मनुस्मृति में हैं। परंतु उसी में कहा है कि वेद के विरुद्ध जो स्मृतिवचन होंगे वे मानना नहीं चाहिये। इस वचन के अनुसार ऊपर दी हुई आज्ञा और इसी प्रकार विषमभाव उत्पन्न करनेवाली दूसरी आज्ञाएं भी वेद के विरुद्ध होने से त्याज्य हैं। स्मृतिकारों का ही वचन है कि वेदोंने सब लोगों को जो समानताका हक दिया है उसे

निकाल लेने का सामर्थ्य स्मृतिकारों में नहीं है। वेदकी आज्ञाएं समानता की हैं और स्मृति की विषमता की हैं। और दोनों में परस्पर विरोध है। तब वेदों की अपेक्षा स्मृति की आज्ञाएं अधिक ग्रहण करने योग्य नहीं कहीं जा सकतीं। पांच प्रकार के लोगों के लिये किस प्रकार समानता की और पक्षपात रहित आज्ञाएं हैं हम लोग देख चुके। अब देखेंगे कि आर्य तथा अनार्यके विषय में किस प्रकार की आज्ञाएं हैं। कुछ लोगों की समझमें वेदोंमें लिखा है कि अनार्यों के साथ पक्षपात करना चाहिये। यह समझ सच है या झूट इसका पता न चलावें तो उपर्युक्त समानता के हक सिद्ध नहीं होते। इस लिये अब देखना चाहिए कि आर्य तथा अनार्य के विषय में कौनसी आज्ञाएं हैं—

ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं
किमीदिने ॥ २ ॥ ऋ० ७।१०४॥

(४) ज्ञानका द्वेष करनेवाला, कच्चा मांस खाने वाला, अघोर तथा भयानक कार्य करने वाला और (आज यह खाया कल क्या खाऊंगा कहने वाला) जो किमीदिन् (विश्वास घातकी- दुष्ट होगा) उसका मन में किसी प्रकार का सोच न करके, सर्वदा द्वेष करो।" इसी प्रकार—

अन्यव्रतममानुषमयज्वानमदेवयुम्॥ अवस्वः सखा
दुधुवीत पर्वतः सुघ्नाय दस्युं पर्वतः ॥ ११ ॥

"पर्वत (जिसे अच्छा मौका मिलता है) को चाहिए कि वह अयोग्य कार्य करने वाला, अमानुष बर्ताव करने वाला, यज्ञ न करने वाला, देवताकी उपासना न करने वाला, या जो दस्यु (दुष्ट, हिंसक) होगा, उसे भलाई के लिये दूर रखे।' इसी प्रकार—

प्रत्यग्ने मिथुना दह यातुधाना किमीदिना ॥ २४ ॥
—ऋ० १० । ८७

वेदों में आज्ञाएं हैं कि 'यातुधान (दुष्टात्मे) तथा किमीदिन (डकैत) को हे अग्नि ! तूं जला दे' । इस प्रकार की सब आज्ञाओं की ओर ध्यान दें तो मालूम होगा कि समाज को हानि पहुंचानेवाले दुष्टों, दुर्जनों, दुराचारियों को ही दण्ड करो । यही उनका भाव है । अनार्यों में किंवा दूसरी किसी जाति में यदि कोई अच्छे मनुष्य हों तो केवल उनकी जाति का अनार्यत्व के लिये ही अमुक दण्ड देना चाहिये इस अर्थ का एकभी मन्त्र वेदोंमें नहीं है । वेदों में जहां कहीं दण्ड देने के विषय में आज्ञा है वहां वह दुष्टों के विषय में ही है । कोई भी यह कहने का साहस न करेगा कि दुर्जन, चोर, लूटमार करने वालों को दण्ड न देकर उन्हें समाज में रहने दो और उनसे शांततासे और नीतिसे रहनेवालों को उपद्रव पचहुंने दो । किसी देश में इस प्रकार का कानून भी नहीं है । तो फिर यही बात यदि वेद में कही हो उसमें अनुचित क्या है ? तात्पर्य यह है कि वेदों में किसी को भी उसकी जाति-विशेषता के लिये दण्डनीय नहीं कहा है किंतु उसकी दुराचारिता के लिये कहा है । परन्तु मनुस्मृति और उसके समान आधुनिक ग्रन्थों में ऐसी आज्ञाएं हैं कि जातिविशेष में उत्पन्न होनेवाले को शहर में न रहने दो, उसे द्रव्य संग्रह न करने दो । नीच जाति में उत्पन्न होने के कारण ही उसे दण्ड का भागी होना पडता है और उसपर होने वाले इस अन्याय का कोई विचार तक नहीं करता यह उचित नहीं । इस प्रकार हमने देखा कि वेदों की आज्ञाओं के अनुसार सब मनुष्यों के हक समान हैं । मनुष्य के सद्गुण वा दुर्गुण के ही कारण उसका आदर या निरादर होना चाहिये ।

अब देखना चाहिये कि विशेष रीतिसे और कौनसी आज्ञाएं लिखी गई हैं—

रुचं नो धेहि ब्राह्मणेषु रुचं राजसु नस्कृधि।
रुचं विश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचा रुचम ॥ ४५
तैत्ति० सं० ५।७।६॥ शु० यजु० १८।४४॥

(५) "ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र में तेज रख और मुझ में भी तेज रख।" इस मन्त्र में प्रार्थना की गई है कि शूद्रों में भी तेज बढ़े। शूद्र तो अनार्य हैं। यदि वेदों का उद्देश होता कि अनार्योंका नाश करना चाहिये, उनके तेज की हानि होनी चाहिये, उन्हें अस्पृश्य समझकर दूर रखना चाहिये और उन्हें व्यवहार करने के योग्य नहीं समझना चाहिये, तो इस प्रकार की प्रार्थना करने की आवश्यकता ही क्या थी ? उपर्युक्त मंत्र का हेतु यही दिखता है कि अनार्योंमें तेज की वृद्धि होवे और उनकी योग्यता बढ़े। "उत शूद्र उत आर्य" (अथर्व० ४।२०) के सदृश प्रयोग वेद में कई स्थानों में नजर आते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि आर्य त्रैवर्णिक लोग हैं और अनार्य शूद्र हैं। आर्य और अनार्यों का आपस में संबंध आने पर ही यह प्रश्न उठता है कि आर्य अपनी उच्च संस्कृति देकर उनकी उन्नति करें, या उन्हें सदा के लिये गुलाम बनाकर दूर रखें। उपर्युक्त मंत्र में इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट रूपसे दिया है। ऊपर दिये हुए मंत्र का यही आशय है कि आर्यों के तेज की हानि न करके उनके तेज की वृद्धि जिस रीति से होवे वही काम कर्तव्य समझ कर आर्यों को करना चाहिये। इसी प्रकार—

यद् ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये ॥
यच्छूद्रे यदर्ये यदेनश्चकृमा वयम् ॥
यदेकस्याधि धर्मणि तस्यावयजनमसि ॥ यजु० २०। १७

"जो पातक हमने गांव में, अरण्य में, सभा में, इन्द्रिय में, शूद्रों में तथा आर्यों में और किसी के धर्म में किया हो उस की निष्कृति हो।"

इस मन्त्र में बतलाया है कि यदि आर्य अनार्यों के साथ अन्याय अथवा अधर्म का बर्ताव करें उसकी निष्कृति होनी चाहिये। अनार्यों के हकों की और उनके मान अपमान की पर्वाह यदि किसी को न होती तो शूद्रों के संबंध में किये हुए पापकी निष्कृति करने की आर्यों को आवश्यकता भी न होती। अनार्यों के साथ कुछ अनुचित बर्ताव हुआ है इस प्रकार की संवेदना हृदय में उत्पन्न होना अनार्यों के हकों की मान्यता का बडा भारी चिन्ह है। अनार्यों के तेज की वृद्धि की बातें करने वालों के हृदय में इस प्रकार का विचार रहना स्वाभाविक है। कौन कहेगा कि अनार्यों के तेज की वृद्धि उनका बहिष्कार करने से होगी ? यह स्पष्ट है कि उनकी उन्नति तभी होगी जब अपनाकर उन्हे विद्यादान किया जाय। इसी प्रकार की समानताका उपदेश आगे के मंत्र में है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः॥ ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय०॥

यजु० २६।२॥

(६) "(जिस प्रकार) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा चारण आदि लोगों से मैंने यह कल्याण करनेवाली वाणी कही।" इस मन्त्रमें कहा है कि अनार्य शूद्रों को भी विद्या का उपदेश करो। जो लोग इस मन्त्र को केवल आशीर्वाद का मन्त्र समझते हैं उन्हें भी एक बात माननी ही होगी। इस में जैसा ब्राह्मणों को वैसाही शूद्रों को दोनों को समान आशी-

र्वाद दिया गया है। यह समानता विचारणीय है। त्रैवर्णिक लोग द्विज हैं। इस से उनमें समानता हो तो आश्चर्य की बात नहीं। पर जो आर्य नहीं हैं, जिनकी संस्कृति अत्यन्त हीन है, जो जित हैं, उनका तेज बढे, उनके साथ अन्याय का बर्ताव न हो और उन्हें भी विद्या का उपदेश समानतासे किया जावे कहनेवाला वेद कितना निःपक्षपाती है? इस बात का कोई भी प्रमाण नहीं मिलता कि अनार्यों को नौकर बनाकर उनसे घरके काम कराने वाले तीन वर्ण के लोग वेद काल में आज जैसी छूत अछूत मानते थे या वे उन्हें अपनाकर उनकी उन्नति किस प्रकार करते थे यथावकाश बतायाही जावेगा; यहां केवल इतनाही दिखाना है कि उन अनार्यों को भी समानता के हक थे। कम से कम इतना अवश्य कह सकते हैं कि वर्तमान काल के सदृश उनकी गुलामी को स्थिति नहीं थी और वे बहिष्कृत नहीं थे।

न मे दासो नार्यो महित्वा व्रतं मीमाय ०॥ अथर्व० ५।११।३॥

"न तो मैं दास को ही जानता हूं और न आर्य को ही, मैं महत्व से आचरण जांचता हूं।" किस आधार पर कह सकते हैं कि इस प्रकार कहने वाले वेद के समय दास, शूद्र या अनार्यों से पक्षपात वा अन्याय होता था? वाचकों को अवश्य सोचना चाहिये कि उपर्युक्त वचन कितना न्याय्य है। उससे ध्वनित होता है कि यदि आर्यों में महत्व का कोई गुण न हो तो उनकी योग्यता कम परन्तु अनार्यों में महत्व का गुण हो तो उनकी योग्यता भी अधिक थी।

उदग्रभं परिपाणाद् यातुधानं किमीदिनम्
तेनाहं सर्वं पश्यामि उत शूद्रमुतार्यम् अथर्व. ४।२०।८

"(जनता की) रक्षाके लिये यातुधानों (दुष्टों) तथा किमीदिनों (हिंसकों) को अलग करता हूं। और इस पर से मैं सब देखता हूं कि आर्य कौन है और अनार्य कौन है।"

इस मन्त्र से आर्य और अनार्यों को पहिचानने की कसौटी ज्ञात होती है। जो कसौटी से सच्चा प्रतीत होगा अर्थात् जो ईमानदारी से कार्य करता होगा वही आर्य है; दूसरे अनार्य। निःपक्षपात का यह एक अपूर्व उदाहरण है। इस स्थान में केवल यही बताना है कि वेद में समानता और निःपक्षपात का हेतु किस प्रकार है; उसपरसे निश्चित अनुमान कर सकते हैं कि उस समय जातिविशिष्ट पक्षपात न था। अब तक जो कुछ कहा गया उससे नीचे लिखी बातें स्पष्ट होती हैं- (१) सब लोगों को एकत्र सम्मिलित होना चाहिये, (२) सब लोगों को सभा में आकर बैठना चाहिये, (३) सब लोगों को यज्ञ में जाना चाहिये, (४) जो दुष्ट कर्म करेंगे उन्ही को दण्ड देना चाहिये, (५) किसी जाति विशेष के लिये खास दण्ड न होना चाहिये, (६) मनुष्य की योग्यता उसके गुणों परसे ही होनी चाहिए, (७) सब लोगों को अपने तेज की वृद्धि करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये। इन बातों पर ध्यान देकर कह सकते हैं कि उस समय अंत्यजवर्ग आज जैसे बहिष्कृत नहीं था और न इस प्रकारकी समाज रचनाही वेद में थी।

सब लोगों में बन्धुभाव है उनमें श्रेष्ठ कनिष्ठ का भाव नहीं है। इस अर्थ का विचार आगे के मन्त्र में है-

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय।

ऋ० ५। ६०। ५

ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा विवावृधुः।

ऋ० ५। ८९। ६

"वे न तो ज्येष्ठ हैं, न कनिष्ठ हैं और न केवल मध्यमही हैं। वे सब (भ्रातरः) परस्पर भाई हैं और अच्छे सौभाग्य के लिये सब (वावृधुः) बढते हैं।"

सब मनुष्य परस्पर भाई हैं। एक ईश्वर ही सब का पिता और प्रकृति या मातृभूमि सब की माता है। इन मावाप के मनुष्य लडके हैं इस लिये वे सब भाई हैं। परन्तु उन में कोई बडा, कोई छोटा, कोई मझला इस प्रकार भेद नहीं है। सब लोग समान दर्जे के हैं। इन में किसी भी प्रकार के भेद की कल्पना करना तथा उन भेदों को जन्मसिद्ध मानना और यह कहना कि वे किसी प्रकारसे हटाये नहीं जा सकते सचमुच वैदिक धर्म के बिलकुल विरुद्ध है।

यदि उपर्युक्त मन्त्रों को इकट्ठा करें तभी वैदिक धर्म की अत्यंत उच्च समानता का भाव समझ सकते हैं। सब धर्माभिमानियोंको यही उचित है कि वे इस समानता के शुद्ध स्वरूप को ध्यान में रखें और अस्वाभाविक रीति से उत्पन्न हुई विषमता को निर्मूल करें।

वेद में बताए हुए उद्योग।

भाग ५ वाँ।

अब हम कहते हैं कि वैदिककाल में जातिभेद वर्तमान समय जैसा नहीं था, तथा उस भेद की अनुगामी छूत अछूत भी न थी तो लोग संभवतः कहेंगे कि वह सभ्यता का समय न था। उस समय भिन्न भिन्न व्यवसायों और उद्योगों की उन्नति नहीं हुई थी, क्या भिन्न भिन्न उद्योग और व्यवसाय रहने पर भी जातिभेद और छूत अछूत नहीं थी? इस प्रश्न पर पूरा विचार करने के लिये हमें सोचना चाहिये कि वेदोंमें कितने उद्योगों और व्यवसायों का उल्लेख है। यजुर्वेद के तीसवे अध्याय में कई उद्योग और व्यवसाय करने वालों की फेहरिस्त दी हुई है। उसपर से उसमें कितने उद्योग और व्यवसाय पाये जाते हैं सो देखेंगे-

(१) ब्राह्मण- अध्ययन, अध्यापन करने वाले।

(२) क्षत्रिय- राष्ट्रकी रक्षा तथा राज्यका प्रबन्ध करनेवाले।

(३) वैश्य- व्यापार, उद्योग तथा खेती करने वाले।

(४) शूद्र- कारीगर और नोकरी करनेवाले।

(५) रथकार
(६) तक्षा
(७) क्षत्ता
} —लकडी का काम करने वाले वढई लोग।

(८) अनुक्षत्ता
(९) दार्वाहार
} — वढई लोगों में से अन्य काम करने वाले लोग

(१०) कारी— (An Artist Mechanic)
कारीगर, यंत्रों को बनाने वाला।
(११) पेशिता- (A Skilful artist) कुशल कारीगर
(१२) अनुचर-हमेशा पास रहनेवाले नौकर।
(१३) रंजयिता- (कपडा आदि) रंगानेवाले।
(१४) कुलाल-कुम्हार, वर्तन बनानेवाला।
(१५) कर्मार ... (१६) अयस्ताप | (A Black smith) लुहार
(१७) अंजनकारी-अंजन बनाने वाला।
(१८) मणिकार- रत्नों का काम करने वाला।
(१९) हिरण्यकार-सुनार।
(२०) वणिज्-व्यापार करनेवाला।
(२१) मैनाल- मछलियां पकडने वाला, धीवर।
(२२) पर्णक- पान बेचने वाला, पन्सारी।
(२३) कलिपन् (२४) अधिकलिपन् | — चक्कू कैंची बनाने वाले।
(२५) वीणावाद (२६) तूणावाद (२७) शंखध्म | — तंतुवाद्य, चर्मवाद्य तथा शंखवाद्य बेचनेवाले।
(२८) पेशस्कारी-पानी चढानेवाले।
(२९) भिषज-वैद्य।
(३०) नक्षत्रदर्शी- नक्षत्रों का वेध लेनेवाले।
(३१) गणक-गणित करनेवाले।

(३२) सूत
(३३) मागध
(३४) शैलूष
(३५) वैशन्तक
— नट आदि के काम करने वाले ।

(३६) धीवर
(३७) कैवर्त
— मछलियां पकड़ने वाले, धीमार ।

(३८) किरात–जंगली लोग ।
(३९) वप--बाल बनाने वाले नाई ।

(४०) इषुकार
(४१) ज्याकार
— धनुष्य का काम करने वाले ।

(४२) निषाद--भील आदि जंगली लोग ।
(४३) गोपाल-- ग्वाल ।

(४४) अविपाल
(४५) अजपाल
—भेडों को पालने वाला ।

(४६) हस्तिप- महावत, हाथि पालने वाले ।
(४७) अश्वप-- सईस, घोडा पालने वाले ।
(४८) सुराकर--शराब बनाने वाले ।

(४९) अजिन संघ
(५०) चर्मम्न
— चमडा जोडने वाले चमार आदि ।

(५१) मृगयु–शिकार करने वाले ।
(५२) विदलकारी- बांसकी टोकरी आदि वस्तुएं बनाने वाले ।
(५३) कीनाश–किसान ।
(५४) अश्वसाद–घुडसवार ।
(५५) कोशकारी-अलमारी,संदूक,तिजोरी आदि बनाने वाले ।
(५६) दास– मछली पकडनेवाले ।

(५७) शौष्कल-मांस बेचनेवाले खटीक।
(५८) पौल्कस-जंगली लोग।
(५९) गोघात- गौ को मार डालने वाले।
(६०) विकृंतक-आरी चलाने वाले।
(६१) आडंबराघातक-नगारा बजाने वाले।
(६२) ग्रामणी-नाई।
(६३) चांडाल-चंडाल।

इन लोगों के नाम यजुर्वेद के ३० वे अध्याय में लिखे हैं। इनके सिवा वेदों में आए हुए दूसरे नामों में से मुख्य नाम इस प्रकार हैं—

(६४) पुरोहित -पुरोहितका काम करने वाले।
(६५) ऋत्विज् तथा यज्ञ के दूसरे याजक —यज्ञ करने वाले।
(६६) किमीदिन्-(किं इदानीं) "अब किस पर हम्ला करें" कहने वाले डाकू।
(६७) यातुधान
(६८) तस्कर
(६९) चोर
— लुटेरे, चोर आदि।

इन नामों को पढने से उस समय के समाज की बहुत कुछ कल्पना हो सकती है। उस समय जैसे शुद्ध ब्राह्मण, अच्छे धार्मिक क्षत्रिय, व्यवहार चतुर वैश्य आदि थे; उसी प्रकार चमार, बसोर, डोम, मच्छीमार, भील, धीवर, मांसाहारी, शाकाहारी, खटीक, गौ का मांस खानेवाले, शराब बनाने वाले आदि सब प्रकारके लोग थे। वर्तमान समय में इन चमार आदि लोग बहिष्कृत अछूत समझे गये हैं। परन्तु वेदों में ऐसा कहीं भी नहीं लिखा है कि

इन लोगों को या और दूसरी किसी खास जाति के मनुष्य को बहिष्कृत, पंगत में बैठ ने के लिये अयोग्य, या अछूत मानो। यदि वेदकाल में इस प्रकार की अछूत का विचार होता अथवा वेदोंको यह बात मंजूर होती कि कोई खास जातियां अछूत हैं तो उस भाव का उल्लेख चार वेदोंमें किसी न किसी स्थान में अवश्य पाया जाता। पर जब इस प्रकार का उल्लेख कहीं भी नहीं है, या ऐसी कोई बात नहीं पायी जाती कि जिस में अछूत का विचार हो तब स्पष्ट है कि अछूत की कल्पना आधुनिक है। जिन उद्योग धंदे वाले को आज अछूत समझते हैं वे उद्योग यदि वेदकाल में न होते तो वह बात कुछ विचारणीय थी। पर उपर्युक्त फेहरिस्त में वे सब उद्योग और व्यवसाय हैं; इस से निश्चय होता है कि वेदकाल में वे उद्योग-धंदे अवश्यमेव विद्यमान थे। इन उद्योग धंधों के रहते हुए भी संपूर्ण वेदों में अछूत का उल्लेख नहीं है, तब तो कहना ही पडता है कि उस काल में इस कल्पना का अभाव था। मनुष्य के समानता के सूक्तोंका उल्लेख पिछले पृष्ठों में आया है और यह भी बताया गया कि प्राचीन काल में हीन धंदा करनेवाले लोगों के रहते हुए भी वे अछूत समझे नही जाते थे। वेदोंमें ऐसा भी कोई वचन नहीं है कि उन्हें अछूत मानना चाहिये। तब तो कहना ही पडता है कि यह कल्पना अवैदिक है अतएव त्याज्य है।

शूद्र कौन है ?

भाग ६ वां।

(१) जब छूत अछूत का विचार हम करते हैं, तथा उसकी सत्यता वा असत्यता के विषयमें सोचते हैं, तब उसके साथ ही साथ जातिभेद का भी विचार करना नितांत आवश्यक है अमुक जाति को अछूत और हमेशा के लिये बहिष्कृत माननेके लिये आधार चाहिये। वह आधार यह है कि हाथी या घोडों के समान वे विशिष्ट जातियां जन्मसिद्ध एवं अभेद्य हैं! तथा ये जातिभेद परमेश्वरने बनाये हैं। इस प्रकार की समझ पर ही उनका महत्व अवलंबित रहता है। तब स्पष्ट है कि जब छूत अछूत का शास्त्रतः वा युक्तितः विचार करना होता है तब जातिभेद का भी थोडा विचार करना आवश्यक है।

आर्यों में त्रैवर्णिकों को उपनयन का अधिकार है, इससे मानना पडता है कि उनमें प्रायः समानता है। आजकल यद्यपि क्षत्रिय वैश्य आदि ऊंची जातिके लोगों को ब्राह्मण, जब शुद्धता में रहता है, स्पर्श करना नहीं चाहता; तब ऐसा नहीं कह सकते कि यही हाल प्राचीन कालमें भी था। परंतु वर्तमान समय में कुछ लोगोंका कथन है कि कलियुग में क्षत्रिय और वैश्य वर्ण ही नहीं हैं केवल ब्राह्मण और शूद्र दोही वर्ण हैं! हिंदूधर्म के वे लोग जो ब्राह्मण नहीं थे, सब शूद्र हैं। शूद्रों में अतिशूद्र, नामशूद्र, तथा शूद्र वा सच्छूद्र आदि भेद मान सकते हैं। ऐसे भेद मानने पर भी प्राचीन काल के चारों वर्ण का अस्तित्व मानने के लिये ये लोग तैयार नहीं हैं। परंतु विचार करना होगा कि चार वर्णों का अस्तित्व न मानने से तथा केवल दो वर्णों का अस्तित्व

माननेसे कौन कौनसी आपत्तियां आती हैं। पुरुषसूक्त में कहा है-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः॥
ऊरू तदस्य यद् वैश्य पद्भ्यां शूद्रो अजायत॥

" इस (पुरुष) का मुख ब्राह्मण है, क्षत्रियों को बाहू बनाया है, वैश्य उसके ऊरु हैं और पैर शूद्र हैं। " इस मन्त्र के भाष्य में सायणाचार्य ने कहा है कि विराट् पुरुष के चार अवयवों से चार वर्ण उत्पन्न हुए हैं। इस मन्त्र का आशय यह है कि ये वर्ण विराट् पुरुष के चार अवयव हैं। पुराने लोगों के मत के अनुसार आज कल बीच के दो अवयव अर्थात् बाहू और ऊरु--नहीं हैं। परन्तु यह तो विराट पुरुष नश्वर है कहने के बराबर होता है। जिसका केवल सिर और पैर ही बचा है वह जिन्दा नहीं रह सकता। इस मतसे विराट् पुरुष पर भी यह आपत्ति आती है। इसलिये यह मत मान्य नहीं हो सकता। विराट् पुरुष जिस प्रकार सनातन है, उसी प्रकार उसके चारों अवयव भी सनातन हैं। यह नहीं कह सकते कि कोई एक वर्ण सदा के लिये नष्ट हो गया है। हाँ वह बीज रूपसे जीवित होगा, आपत्ति का समय आजाने से वह सत्वहीन हुआ होगा इत्यादि बातें मनमें आसकती हैं। परन्तु यह कहना अनुचित होगा कि वह वर्ण बिलकुल नष्ट हो गया: कोई एक विशेष गुण मनुष्यों के समाज में से बिलकुलही नष्ट हो गया। तब तो मानना ही पडता है कि विराट् पुरुष नित्य है इसलिये चारवर्ण भी नित्य हैं। प्राचीन पक्ष की ओर से आधार के लिये कहा जाता है कि 'परशुराम ने पृथ्वीको इक्कईस बार निःक्षत्रिय किया'। परन्तु इस वचनका अर्थ यथार्थ में वह नहीं है जो साधारणतः माना जाता है। जिस प्रकार प्रथम बार पृथ्वी निःक्षत्रिय करने पर फिरसे बीसवार पृथ्वी निःक्षत्रिय

करने के लिये क्षत्रिय शेष बच रहे; संभव है कि वैसेही इक्कईसवीं बार पृथ्वी निःक्षत्रिय करने पर भी वे बचे हों। तब 'निःक्षत्रिय पृथ्वी' का अर्थ 'सब क्षत्रिय वर्णोंका संहार' न समझ कर 'अहंकार से वा विरुद्ध पक्ष से आगे बढे हुए क्षत्रियों का नाश' इतनाही समझना चाहिये। बहुत क्षत्रिय गुप्त रीतिसे परशुराम के आधीन होकर अथवा आपत्तिके समय वैश्यों के काम करके बच गये होंगे। परशुराम द्वारा इक्कईस बार पृथ्वी निःक्षत्रिय हो जाने पर भी क्षत्रियों के कई कुल शेष थे इस बात का पता पुराणों से चलता ही है। यदि क्षत्रिय बिलकुल बचे न थे, तो आगे चलकर जिन सूर्यवंशके और सोमवंश के क्षत्रियों में श्रीरामचन्द्रजी और श्रीकृष्णचंद्रजी जैसी विभूतियां हुईं वे क्षत्रियं कहां से आये? जब ये कुल विद्यमान थे तब सिद्ध है कि परशुराम ने सब क्षत्रिय कुल नष्ट नहीं किये, किन्तु जितने उसके सामने आये उन्हीं का उसने नाश किया। उसने अबलाओंका, गर्भधारिणी स्त्रियोंका, तथा छोटे बालकों का संहार नहीं किया, किन्तु रणशूर योद्धाओं का ही संहार किया। इस से स्पष्ट है कि परशुरामके उपरान्त कई क्षत्रिय गुप्त रीतिसे रहें। और अनुकूल समय आने पर श्रीरामचन्द्रजी के समय वे प्रगट हुए।

प्राचीन पक्ष की ओर से क्षत्रिय कुलोंका नाश सिद्ध करने के लिये पुराणोंके 'नन्दान्तं क्षत्रियकुलम्' वचन का आधार पेश किया जाता है। इसका इतना व्यापक अर्थ किया जाता है कि नन्द राजाके अन्ततक ही क्षत्रिय- कुल रहेगा, उसके बाद कलियुग में क्षत्रिय बिलकुल न रहेंगे। परन्तु इस वाक्य को यदि सच्चा समझते हैं तो 'परशुरामने पृथ्वीको निःक्षत्रिय किया' का अर्थ गौण वृत्ति से मान लेना आवश्यक है। क्यों कि इस वाक्य को सच्चा समझने पर भी परशुराम के बाद क्षत्रियों का अस्तित्व कबूल

करना पडता है। इस प्रकार परशुराम के पराक्रमोंका पुराणका सरस वर्णन गौणार्थक मानलेने पर 'नंदान्तं क्षत्रियकुलम्' भी पूर्णार्थक कैसे मान सकते हैं ? एक ही पुराण के दोनों वाक्योंको समान अर्थ के होने से गौण मानना ही उचित है। तब विराट् पुरुषके सनातनत्व के कारण और पुराण के वचनों के गौण अर्थ के कारण यह बात सिद्ध नहीं होती कि कलियुग में क्षत्रिय नहीं हैं। मानना पडता है कि क्षत्रिय विद्यमान हैं। वैश्यवर्ण के संहार का विशेष रूपसे कहीं भी आज उल्लेख न होनेसे मानना पडता है कि वह वर्ण भी आजकल विद्यमान है। सारांश यह कि वैदिक काल के समान वर्तमानकालमें भी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, चारों वर्ण विद्यमान हैं। आजकल की प्रचलित समझ कि जितने अ-ब्राह्मण हैं सब शूद्र हैं, झूट है। यहां वाचकों को ध्यान में रखना चाहिये, कि आजकल के अ—ब्राह्मणों में ब्राह्मणोंकी बराबरी के द्विज (क्षत्रिय और वैश्य) सम्मिलित हैं। जब हम कहते हैं कि सब अ-ब्राह्मण शूद्र नहीं हैं, उनमें क्षत्रिय और वैश्य भी हैं; तो यह प्रश्न उठता है कि शूद्र किसे कहना चाहिये ? इसका विचार आवश्यक है क्षत्रिय तथा वैश्य त्रैवर्णिकोंमें से हैं। इससे उनमें छूत अछूत के झगडे की संभवना नहीं है। यदि हो सकता है तो यह झगडा शूद्र के संबंध में ही हो सकता है। इसी लिये देखना चाहिये कि शूद्र कौन है ? पहले देखें कि 'शूद्र' वर्ण का लक्षण क्या है —

" शुचा शोकेन द्राति, द्रवति धावति इति शूद्रः। "

इस का अर्थ है, 'जो मनुष्य शोक से व्याकुल हो कर दूर भागता है वह शूद्र है।' वेदान्त दर्शन में सूत्र है-

शुगस्य तदनादरश्रवणात्० ॥ (वेदान्तदर्शन पा० १। ३।३५)

इसमें ध्वनित किया है कि " शूद्रों को वेद सीखने का अधिकार नहीं है, इससे उसे शोक होता है। " यह बात बिलकुल भिन्न है कि शूद्रों को वेद सीखने का अधिकार है या नहीं। इस स्थान में उसका विचार करने की आवश्यकता नहीं है। इस सूत्र में हमें केवल इतना ही देखना है कि " जिस मनुष्य को इस बात के मालूम होने से दुःख होता है कि हम वेद नहीं जानते, वह शूद्र है। " जब तक उसे इस प्रकार का शोक नहीं हुआ तब तक उसे 'दस्यु, दास या अनार्य' कह सकते हैं। पर उसे शूद्र नहीं कह सकते। इस विशेष अर्थ पर ध्यान देना चाहिये। वही शूद्र है जिसके दिल में इस बात की शरम उत्पन्न हुई है कि हम अज्ञानी हैं, जो इसी शरम के कारण विद्वानों की सभामें जानेसे डरता है और इसी लिये दूर रहता है, और जिसे विद्वानोंने इसी लिये दूर रखा है कि वह वेद नहीं जानता।

इन लक्षणों से ज्ञान हो जावेगा कि 'शूद्र वही है जो अज्ञानता के लिये शोकमें रहता है'। यह उस का गुण है। अब उसके कर्तव्य क्या हैं, देखें। देखना चाहिये कि ऐसे कौनसे कार्य हैं जो अन्य वर्णों में नहीं दिखाई देते, केवल इसी में दिखाई देते हैं।

परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्याऽपि स्वभावजम्।

गीता. अ० १८। ४४॥

'शूद्र का स्वाभाविक काम परिचर्यात्मक है।' परिचर्या में सब घरेलु काम आते हैं। झाडना, लीपना, बर्तन मांजना (साफ करना), धोती धोना, भोजन पकाना, बिस्तर बिछाना, आदि शूद्रों के काम हैं। स्वाभाविक काम कहने का कारण यही कि उनकी बुद्धि त्रैवर्णिकों के इससे श्रेष्ठ काम करने योग्य नहीं होती। इसी लिये मनु महाराज का कथन है कि-

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ॥
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ ९१ ॥
मनु० अ० १ । ९१ ।

'मत्सर को छोड इन तीन वर्णों की सेवा करने का एकमात्र कार्य प्रभुने शूद्रों को दिया है।' परन्तु इससे यह निश्चित नहीं होता कि शूद्र है कौन ? जब निश्चित हो जावे कि शूद्र कौन है तब सोच सकते हैं कि उसके लिये क्या करना उचित है।' इसलिये प्रथम यही देखना चाहिये कि शूद्र कौन है ? निम्न लिखित मनुस्मृति के वाक्य से ध्वनि निकलती है कि घरके नौकर ही शूद्र हैं।

भुक्तवत्स्वथ विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैव हि ।
भुञ्जीयातां ततः पश्चात् अवशिष्टं तु दम्पती ॥
मनु० अ० ३ । ११६

'ब्राह्मणों का (द्विजोंका) भोजन होनेके बाद तथा अपने नोकरों के भोजन के उपरान्त घरके मालिक तथा मालकिन को शेष अन्न का सेवन करना चाहिये ।'

कह सकते हैं कि इस श्लोक में यद्यपि शूद्र शब्द नहीं है, तब भी उसीका समान अर्थी भृत्य शब्द इसमें आया है । अर्थात् इससे मालूम होता है कि काम करने वाले नौकरों को ही शूद्र संज्ञा दीगई है । त्रैवर्णिकों की सेवा ही शूद्रोंका स्वाभाविक कर्तव्य है कहने से भी यही बात सिद्ध होती है । आगे के श्लोक से मालूम होता है कि ऊंचे वर्णोंके लोग भी निज वर्णोंके काम के लिये अयोग्य होने पर अथवा उन कामों को छोड देने पर शूद्र हो जाते थे-

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ॥
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥
मनु० अ० २ । १६८

" जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय; तथा वैश्य तीन वर्णों में से एक) वेद न पढकर अन्य व्यवसाय में परिश्रम करता है, वह तत्काल जीते ही शूद्रत्व को प्राप्त होता है। " त्रैवर्णिक याने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, वेदाध्ययन करके यदि अन्य व्यवसाय करें तो कोई हानि नहीं; पर यदि वे शिक्षा छोडकर अन्य काम करें तो वे उसी समय शूद्र होंगे । यही उपर्युक्त श्लोक का भाव है। इससे निश्चित होता है कि वेदाध्ययनही द्विजत्त्व का चिन्ह है और जिसमें वह नहीं है वही शूद्र है। वर्तमान समय में वेदाध्ययन न करने वाले द्विजोंको -- विशेषतः उनको जो ब्राह्मण कहलाते हैं- चाहिये कि उपर्युक्त बात पर खूब ध्यान दें । इस श्लोकसे स्पष्ट होता है कि वेदाध्ययनहीनत्व ही शूद्रत्व का चिन्ह है ।

इसी प्रकारः-

शुश्रूषैव द्विजातीनां शूद्राणां धर्मसाधनम् ।
कारु-कर्म तथाऽऽजीवः पाकयज्ञोऽपि धर्मतः । ग० पु० अ० ४९

(३) " द्विजोंकी (ब्राह्मण, क्षत्रीय, तथा वेश्यों की) सेवा करना ही शूद्रों के लिये धर्माचरण करने के बराबर है । जीवन निर्वाह के लिये वे बढई का काम अथवा शिल्प काम भले ही करें तथा धर्म से पाकयज्ञ भी करें ।"

इस वचन में कहा है कि कारीगरी का काम करने का शूद्रों का धर्म है और वे जीविका के लिये उसे कर सकते हैं । उनका काम केवल इतना ही नहीं है कि वे द्विजों की सेवा करें । यदि वे चाहें कि किसी की सेवा न करके स्वतंत्र व्यवसाय करें तो वे कारु - काम कर सकते हैं । इसी प्रकार वे अपने धर्म के अनुसार पाक - यज्ञ भी कर सकते हैं । अब देखना होगा कि कारु - कर्म में किस प्रकार का काम आता हैः-

तक्षा च तंतुवायश्च नापितो रजकस्तथा ॥
पंचमश्चर्मकारश्च कारवः शिल्पिनो मताः ॥

आगे दिये हुए पांच शिल्पकार(कारु)हैं:--वढई, कुप्टा, नाई,धोबी और चमार- कारु कर्म पांच प्रकार के हैं और वे शूद्रोंके काम हैं। अथवा दूसरी रीतिसे कहना हो तो यों कह सकते हैं कि जो लोग स्वभावही से ये काम करते हैं वे शूद्र हैं। इस श्लोक के अनुसार चमार भी शूद्र कह- लाया और कर्म के अनुसार शूद्रको ब्राह्मण की सेवा का अधिकार है। इससे यदि कहें कि चमार को भी द्विज की सेवा करते बनना चाहिये तो वह युक्ति - विरुद्ध न होगा। यदि निश्चय हुआ कि शूद्र अछूत हैं तो कहने की आव- श्यकता ही नहीं कि वे सेवा नहीं कर सकते। इस लिये स्पष्ट है कि सेवा करने वाले शूद्रों को अछूत कहना व्यर्थ है। वराह पुराण में भी कहा है:—

शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा तथा जीवनवान् भवेत ॥
शिल्पैर्वा विविधैर्जीवेत् द्विजातिहितमाचरन् ॥

—वराहपुराण।

"शूद्रों को चाहिये कि वे द्विजों की शुश्रूषा करके रहें अथवा भिन्न भिन्न कारीगरी के कामों से अपना जीवननिर्वाह करें। उनको चाहिये कि वे हमेशा द्विजों का हित करें।" यह वात उन्ही पूर्वोक्त कारीगरों के विषयमें कही गई है। समाजमें जितनी योग्यता कारीगरों की है उतनी योग्यता शूद्रोंकी भी रहने से कोई नुकसान नहीं है। देश की संपत्ति कारीगरोंपर अवलम्बित रहती है और उपर्युक्त ग्रंथकर्ताओंका कथन है कि शूद्रों का काम कारीगरी है तव सिद्ध है कि देश की संपत्ति शूद्रों के ही कामसे घट या वढ सकती है। अर्थात् राष्ट्र के हित की

दृष्टिसे देखें तो मालूम होता है कि तीन वर्णोंकी अपेक्षा शूद्र की ही योग्यता अधिक है। तब तो उनका अपमान करनेसे काम न चलेगा। उनके उचित हकों की ओर ध्यान न देने से काम न होगा। इसी प्रकार यदि शूद्र राष्ट्रके पैर हैं, तो जैसे पैरों के विषय में लापर्वाह रहने से शरीर का इधर उधर जाना असम्भव हो जाता है वैसे ही शूद्रों के हकों के विषय में लापर्वाही रखने से राष्ट्रकी उन्नति नहीं हो सकती। इस लिये उनके कार्य और अधिकार कौनसे हैं देखकर वे उन्हे देना चाहिये। समय तथा परिस्थिति की ओर ध्यान देकर तथा उनकी योग्यता की जांच कर उनकी उन्नति करनी चाहिये। इस बात पर भी ध्यान देना चाहिये कि यदि वह वेदपठन करने लगे तो वह शूद्र नहीं। ऊपर कहा है कि शूद्रों का पूर्वोक्त पांच धंधे करने का हक है। हर एक शास्त्र कहता है कि शूद्रों का काम सेवा करने का है। पर देखना चाहिये उस सेवामें कौन कौन काम शामिल हैं

ब्राह्मणादिषु शूद्रस्य पचनादि क्रिया तथा॥

-पृथ्वीचंद्रोदय।

(४) 'ब्राह्मणादि के घरमें अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों के घरमें शूद्रको भोजन पकाना चाहिये।' सेवा में जैसे बहारा लगाना, लीपना, बर्तन मलना तथा धोती धोना शामिल है वैसे ही उस में भोजन पकाना भी शामिल है। शूद्रों का यह अधिकार छूत अछूतका विचार तथा स्वयं-पाक का विचार समाज में प्रचलित होनेपर छीन लिया गया है। उसके पहले वह नहीं छीना था। पाकयज्ञ के शूद्रों के हक के विषय में यहां विचार करना चाहिये। उससे मालूम होगा कि ब्राह्मणादि द्विजों

के घर भोजन पकाने का हक शूद्रों को ही है। कोई भी इस बात का इनकार न करेगा कि परिचर्या में भोजन पकाना भी आता है।

दिने त्रयोदशे प्राप्ते पाकेन भोजयेत् द्विजान् ॥
अयं विधिः प्रयोक्तव्यः शूद्राणां मन्त्रवर्जितः ॥
— (श्राद्धचिंतामणि उद्धृत) वराह पुराण।

"तेरहवें दिन भोजन पका कर द्विजों को खिलाना चाहिये। यह मन्त्रवर्जित विधि शूद्रों का है, इस लिये वह उन्ही को करना चाहिये।" इस पर से भी स्पष्ट होता है कि शूद्रों का पकाया हुआ भोजन खाने में द्विजों के लिये कोई आपत्ति नहीं। यदि ऐसा हो तो यह कहना कि उन्हें पाक यज्ञ करने का अधिक व्यर्थ है। देखिये वृद्ध हारित स्मृति में क्या कहा है:-

आरंभयज्ञः क्षत्रियस्य हवीर्यज्ञो विशामपि ॥
पाकयज्ञस्तु शूद्राणां जपयज्ञो द्विजोत्तमे ॥
वृद्धहारीत स्मृति. अ०२

'क्षत्रियोंने आरंभ--यज्ञ, वैश्योंने भी हविर्यज्ञ, शूद्रोंने पाकयज्ञ और द्विजोत्तम ब्राह्मणों ने जपयज्ञ करना चाहिये।' शूद्रों का पकाया हुआ भोजन यदि तीनों वर्णों के काम का न होता, तो शूद्रों को पाक-यज्ञ का अधिकार बतलानेका कोई मतलब न होता। जब बताया है कि शूद्रों को पाकयज्ञ का अधिकार है और उन्होंने भोजन पका कर द्विजों को खिलाना चाहिये। तब कहना ही पडता है कि शूद्रों को जितना अछूत अब समझते हैं उतना पहले नहीं समझते थे। अर्थात् विना कहे नहीं रहा जाता कि यह छूत अछूत का झगडा बिलकुल आधुनिक, अज्ञानयुग का है। पहले बतलाये हुए पांच प्रकार के

व्यवसाय करके जीविका चलाने वाले शूद्र कदापि अस्पृश्य नहीं हैं। स्वतन्त्र व्यवसाय करके स्वाभिमानसे रहना हीन-वृत्ति का लक्षण कदापि नहीं हो सकता। गौतम मुनि का कथन है कि परावलम्बित्वसे अर्थात् दूसरे की गुलामीमें रहने से शूद्रत्व, आता है। देखिये:-

यस्तु राजाश्रयेणैव जीवेद् द्वादशवार्षिकम् ॥
स शूद्रत्वं व्रजेद्विप्रो वेदानां पारगो यदि ॥

वृद्ध गौतमस्मृति, अ० १९

(५) 'जो बारह वर्षों तक केवल राजाश्रय से रहता है, वह विप्र वेदपारग होनेपर भी शूद्रत्व को प्राप्त होता है।' इसी प्रकार-

आरोप्य दासीं शयने विप्रो गच्छेदधोगतिम् ॥
प्रजामुत्पाद्य शूद्रायां ब्राह्मण्यादेव हीयते ॥ ३७ ॥

गरुड पुराण। अ० ४

'जो विप्र अपनी शैय्यापर शूद्री को लेता है तथा उससे जिसको संतति होती है, वह हीनगति को पहुंचता है। इतनाही केवल नहीं वरन वह ब्राह्मण ब्राह्मणत्व से भी हाथ धो बैठता है।' अनेक ग्रंथों में बहुत अच्छी रीतिसे बताया गया है कि इस प्रकार ब्राह्मण भी हीन होकर शूद्र बनते हैं। शूद्रों में जैसे ऊंचे दर्जे के लोग हैं वैसे ही नीचे दर्जे के भी हैं। मनुस्मृति के आधारपरसे पहले बतला ही दिया है कि शूद्र पुरुष और ब्राह्मण स्त्री से उत्पन्न हुई संतान चांडाल है। उससे ज्ञात होगा कि चांडाल भी शूद्रों में ही आते हैं। अब आगे का श्लोक देखिये। उसमें बतलाया गया है कि और किस प्रकार चांडालत्व प्राप्त होता है।

विप्राणामर्चनं नित्यं शूद्रधर्मो विधीयते ॥
तद्द्वेषो तद्धनग्राही शूद्रश्चांडालतां व्रजेत् ॥
ब्रह्मवैवर्त पुराण, अ० ८३

" विप्रों का आदर करना ही शूद्रों का धर्म है । वह छोड कर जो शूद्र उनका द्वेष करता है तथा उनका धन लूटता है, वह चांडाल हो जाता है । " इस श्लोक में बतलाया है कि शूद्र किस प्रकार के आचरण से चांडाल बनता है । अर्थात् चांडालोंके कार्य चोरी, द्विजद्वेष आदि – छोड देने से चांडाल भी शूद्र हो जाता है । जो अनार्य लोग द्विजों के अनुकूल वर्ताव करते हैं वे शूद्र हैं; और जो अनार्य उनके प्रतिकूल रहकर उनका द्वेष करते हैं वे चांडाल हैं । वर्तमान समय में जो लोग चांडाल समझे जाते हैं, वे त्रैवर्णिकों का द्वेष करनेवाले नहीं हैं और उनमें द्विजों के साथ सहकार करने का गुण भी है । इससे वे यथार्थ में चांडाल नहीं, शूद्र ही हैं । सब सच्चे शास्त्रकारों को मंजूर है कि अच्छे गुणों से उन्नति और बुरे गुणों से अवनति होती है । इसी उद्देश्य से पराशर मुनि आगे के श्लोक में बताते हैं कि सच्छूद्र किसे कहना चाहिये ।

विशुद्धान्वयसंजातो निवृत्तो मद्यमांसयोः ॥
द्विजभक्तिर्वणिग्वृत्तिः सच्छूद्रः संप्रकीर्तितः ॥
— वृद्धपाराशर स्मृति । अ० ४

(६) " जो शुद्ध कुल में उत्पन्न हुआ है, जिसने मद्य, मांस का त्याग किया है, जो द्विज की भक्ति करता है, तथा जिसकी प्रवृत्ति वाणिज्य की ओर है, उसे सच्छूद्र कहते हैं । "

इस श्लोक में बतलाया है कि शूद्रों से सच्छूद्र किस प्रकार बनते हैं । शूद्र लोग जब चोरी, लूट आदि निंद्य काम करने लगते

हैं, तब वे चांडाल कहलाने के योग्य होते हैं; परन्तु ज्योंही वे सदाचार से रहने लगते हैं, मद्य मांस को छोड देते हैं और वाणिज्य करने लगते हैं त्योंही वे सच्छूद्र कहलाने के योग्य हो जाते हैं। इस प्रकार हम जान सकते हैं कि अनार्यों में से सच्छूद्र कैसे बनते थे। यहां हम देखते हैं कि सदाचार और कुल का मिलाप कितनी अच्छी तरह हुआ है। इस प्रकार जो सच्छूद्र बन जाते थे उनका उपनयन-संस्कार कराकर वे द्विजों में शामिल किये जाते थे।

शूद्राणामदुष्टकर्मणामुपनयनम् ॥

पारस्कर गृह्यसूत्र टीका।

"दुष्ट कार्य न करने वाले शूद्रों का उपनयन करना चाहिये।" इस प्रकार उपनयन के बाद उन्हें द्विज कहते थे और इस प्रकार शूद्रोंके द्विज बनते थे। उन्हें आशा रहती थी कि यदि सत् आचार से चलें तो अपनी उन्नति होगी। परंतु वे आशाएं और वे आकांक्षाएं जाति की दृढता के कारण तथा छूत अछूत निश्चित होने के कारण पूर्णतया नष्ट हुई हैं। किसी भी समाज को उचित नहीं कि वह किसी भी मनुष्य की आकांक्षा, आशा तथा उत्साह को नष्ट करे। उससे मनुष्य का मनुष्यत्व नष्ट होता है। यदि कोई दूसरे को हीन बनाने की चेष्टा करे तो वह खुद ही कुछ हीन होता है। दूसरे को झुकाने की चेष्टा करनेसे खुदको भी झुकना ही पडता है।

(७) बतला चुके हैं कि द्विजों की नोकरी करके, भोजन पकाना आदि शूद्रों के कामोंको आधार क्या है। शूद्रों को अछूत मान कर वे काम उनसे छुडा लिये, इससे अब वे काम ब्राह्मणों को ही करने पडते हैं। इसीसे ब्राह्मण शब्द हीनता दर्शाने वाला हो गया है। विचारी मनुष्योंको चाहिये कि वे इसपर ध्यान दें। ब्रह्म जानाति इति ब्राह्मणः।' पहले की प्रथाके अनुसार उसीको

ब्राह्मण कहना चाहिये जो ब्रह्म को जानता है तथा ब्रह्म का उपदेश करता है। ब्राह्मण कौन है? वही जो ब्रह्मज्ञानी हो और ब्रह्म का उपदेश करे। परंतु आजकल उसी परम पवित्र ब्राह्मण शब्द का अर्थ 'रसोइया' रूढ हो गया है। देखने योग्य है कि आचार की अवनति के साथ ही शब्द के अर्थ की भी कैसी अवनति होती है। 'क्या आपके साथ कोई ब्राह्मण (ब्रह्मन्) है?' इस प्रश्न से यह अर्थ निकलता है कि क्या आपके साथ कोई रसोई पकाने वाला है? किसी के मन में भी नहीं आता कि इसका अर्थ श्रोत्रिय, पढीक, विद्वान् अथवा वेदान्ती ब्राह्मण है। मानो ब्राह्मणों का काम रसोई पकानेका है और वह वंशपरंपरासे चला आता है। इस से मालूम होगा कि शूद्र को अलग कर देनेसे ब्राह्मण को किस प्रकार अवनत होना पडा है। "आचारं ग्राहयतीति आचार्यः।" आचार्य शब्द का असली अर्थ है 'दूसरों को उपदेश देनेवाला'। पर वह शब्द अब महाराष्ट्र में बिगडकर 'आचारी' बन गया है और उसका 'रसोइया' के अर्थ में उपयोग किया जाता है। हाय! यह कितनी भारी अवनति है? भाषा के शब्दों के बदले हुए अर्थ बदले हुए विचारों को बतलाते हैं। एक समय जिसका अर्थ उच्च था वह नष्ट होकर उसके स्थान में नीच अर्थ चल पडा। यह बात कदापि नहीं बतलाती कि उन्नति हुई है। शूद्रोंको अछूत समझ लिया इससे उनके काम खुद ब्राह्मणों को करने पडे। वे काम करते करते उच्च ब्राह्मण खुद ही अवनत हुए। इसी लिये कहा है--

सदाचारेण देवत्वं ऋषित्वं च तथैव च॥
प्राप्नुवन्ति कुयोनित्वं मनुष्यास्तद्विपर्यये॥

—संवर्त स्मृति।

"यदि मनुष्य सदाचार से चलें तो वे ऋषित्व तथा देवत्व

प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु यदि वे दुराचार से चलें तो हीन हो जाते हैं। " यह संवर्त स्मृति का वचन बिलकुल सत्य है। पहले बतला दिया गया है कि इसी वचन के अनुसार अनार्य से सच्छूद्र और सच्छूद्र से आर्य कैसे बनते थे। यह भी बता दिया कि ऊंचे वर्ण के लोग भी नीचता के कार्यों से शूद्र किस प्रकार बनते थे। अब शूद्रों के और भी दूसरे गुणों का विचार करना आवश्यक है। अबतक भिन्न भिन्न ग्रन्थों के वचनों के आधार पर विचार हुआ। अब देखेंगे कि शूद्रवाचक भिन्न भिन्न शब्दों के अर्थ से क्या सिद्ध होता है।

(८) " शूद्र " शब्द के लिये अन्य पर्यायवाचक शब्द हैं— " अन्त्यज, जघन्यज, वृषल "। संस्कृत भाषाका हरएक शब्द कोई विशेष बात बतलाता है। इसी के अनुसार हम देखेंगे कि शूद्र शब्द के पर्यायवाचक शब्द कौनसा अर्थ बतलाते हैं। ऐसा करने से संभव है कि उनके शूद्रत्व की जड का पता चलें। पीछेके पृष्ठों में शूद्र शब्द के अर्थ दिये हैं अब दूसरे शब्दों के अर्थ देखें-

" जघन्यज, और अन्त्यज " शब्दों से ज्ञात होता है कि वे तीन वर्णों के बाद उत्पन्न हुए हैं। परमेश्वर के चार अवयवोंसे चार वर्णों की उत्पत्ति हुई है। इस बात को मानने वाले लोगों की समझ है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की उत्पत्ति मुख, बाहु और ऊरु से हुई है और इसके बाद शूद्रों की उत्पत्ति पैर से हुई। इसी समझ की छाया उपर्युक्त शब्दों में है। ध्यान रहे कि मनुष्य-मात्र की उत्पत्ति परमेश्वर से हुई और उनके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र, चार विभाग हैं। अर्थात् इन चार (जाति) विभागों के लोग संसार में सब जगह पाये जाते हैं। तब शूद्र या चांडाल शब्द से उन लोगों का बोध होता है जो इनमें बुद्धिहीन हैं और पिछडे हुए हैं।

❀

'पंचम' शब्द का उपयोग किसी किसी प्रान्त में अछूत शूद्रों के लिये होता है। वेद में 'पंचजन' शब्द आया है। वहां उसका अभिप्रेत अर्थ 'निषाद' है; परन्तु पंचम शब्द से निषादोंका-भील आदि जंगली जातियों का-बोध नहीं होता। उससे बोध होता है धेड, चमार आदि अछूत जातियोंका। शायद 'पंचमश्चर्मकारश्च' इस स्मृति के वाक्य के कारण 'पंचम' शब्द का उपयोग चमार आदि अछूत जाति के लिये हुआ होगा। वास्तव में वेदमें जिसे पांचवा वर्ग करके कहा है, वह निषादोंका (भील आदिका) वर्ग उतना अधिक अछूत नहीं माना जाता जितना कि गांव के पास ही रहने वाला चमार आदि का वर्ग माना जाता है। आश्चर्य की बात यही है। चर्मकार शूद्र है और शूद्र का काम ब्राह्मण की परिचर्या करने का है। इसलिये वह अछूत नहीं है। परन्तु 'पंचम' शब्द इसी जातिको देकर उसे शूद्रों से अलग और पूर्णतया बहिष्कृत कर दिया है। 'अन्त्यज' शब्दभी असल में सारी शूद्र जाति के लिये है। पर अब उससे केवल धेड और चमार ही पहिचाने जाते हैं। इस प्रकार इस शब्द के अर्थ संकोच होकर उससे किसी खास जाति का ही बोध होने लगा। इससे अन्त्यज शूद्रोंसे भी नीच तथा अधिक अछूत समझे गये। परन्तु असली अर्थ देखा जावे तो 'अंत्यज' शब्द से सब शूद्रों का ही बोध होता है। यहां केवल इतनाहीं सिद्ध करना है कि अन्त्यजों को कोई खास जाति नहीं थी। अन्त्यज के मायने शूद्रही हैं। परन्तु जब छूत अछूत चल पडी, तब 'अन्त्यज' शब्द का उपयोग खास जाति के लिये होने लगा और दूसरे शूद्र अलग समझे जाने लगे। ऐसा होने के लिये रूढि को छोड कर दूसरा बलवान कारण कोई नहीं है।

'वृषल' शब्द अत्यन्त महत्व का है। इस शब्द का अर्थ शूद्र प्रसिद्ध है। परन्तु इसी के अर्थ का पूरा विचार करने के लिये इस के मूल अर्थ की ओर ध्यान देना होगा। इस में दो शब्द हैं, 'वृ-षल'। 'वृष' शब्द का अर्थ है बैल और 'ल' का अर्थ है नाश करना, लय करना, काटना। इस शब्द का उपयोग पहले पहल गौ और बैलको मारकर खाने वाले अनार्यों के लिये ही किया गया होगा। आर्य लोग पहले ही से गौ को पालते रहे हैं और अनार्य गौ के मांस को खाते रहे हैं। तब मालूम होता है कि आर्यों ने अनार्यों के रोज के काम पर से ही उनके लिय इस शब्दका उपयोग किया होगा। पीछे आये हुए सत्—शूद्रों के लक्षणों में बताया है कि "निवृत्तो मद्यमांसयोः" अर्थात् जिसने मद्य का पान और मांस का भक्षण छोड दिया हो वही सत्-शूद्र है। इस से असत्—शूद्र का लक्षण यह हो सकता है कि वह मद्य और मांस-विशेषतः वृषल शब्द से ध्वनित होने वाला गौ का मांस या बैल का मांस-खानेवाला है। बंगाल, बिहार में शूद्रों के असत्-शूद्र और सत्-शूद्र या अशुद्ध-शूद्र और शुद्ध-शूद्र दो भेद किये जाते हैं। ये भेद बहुत प्राचीन मालूम होते हैं। इन भेदों का मूल कारण भक्ष्याभक्ष्य का विचार ही हुआ होगा। इस परसे आधुनिक अंत्यजों को अछूत मानने का कारण मालूम हुआ। ईसाई और मुसलमानोंने अपनी स्वच्छता—गोमांस-भक्षक होते हुए भी-राजपाने से, प्राप्त कर ली। परन्तु बेचारे अन्त्यजों को-धेड, चमार आदि लोगों को-इस प्रकार का मौका न मिला। इससे उनका बहिष्कार कायम रहा और दिन प्रतिदिन बढता ही गया। अस्तु। वृषल शब्द का उपयोग पहले पहल गोमांस भक्षण के कारण शूद्रों के लिये

हुआ। आगे चलकर कुछ शूद्रों ने मांस खाना छोड दिया और वे सत्-शूद्र बने। तव भी उस शव्दने उनका पीछा न छोडा। आजकल यदि कोई वृषल होंगे तो वे गोमांस खाने वाले अन्त्यज ही हैं। शूद्र लोग बैल मारते थे। इस के संबंध में एक कथा भागवत के स्कं० १ अ० १७ में आई है —

तत्र गो--मिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत् ॥
दण्डहस्तं च वृषलं ददर्श नृपलाञ्छनम् ॥ १ ॥
श्री· भागवत १ । १७

" उस राजा ने देखा कि राजचिन्हों को धारण करने वाला एक वृषल (शूद्र) गाय और बैल का करीव करीब हनन ही कर रहा था। "

उस बैल के तीन पैर पहले ही काट डाले गये थे। केवल एक पैर बचा था। ऐसी दीन दशा में उस बैल को देखकर उस राजा का हृदय दया से भर आया और उस बैल और उसके साथ ही गाय का भी छुटकारा करने का उस परीक्षित राजाने निश्चय किया। भागवत में इस प्रकार की किस्सा है। इस कहानी में एक रूपक है। कलि शूद्र है और बैल धर्म है। इस रूपक में भी शूद्र बैलका मांस खाने वाला है का ध्वनि है। इस में देखने लायक बात यह है कि कलियुग में जिस प्रकार धर्म की हानि होती है, उसी प्रकार गाय और बैल की हत्या भी शूद्रों से होती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रकी तुलना कृत, त्रेता, द्वापर और कली युगों से की गई है और धर्म को गो--मिथुन की उपमा दी गई है। जिस प्रकार कलियुगमें धर्म पूर्णतया नष्ट हो जाता है इसी प्रकार शूद्रों द्वारा गाय और बैल का पूर्णतया लय या नाश होगा। इसीलिये शूद्र

'वृषल' कहलाते हैं। त्रैवर्णिकों में से शूद्रों का तो यह काम ही है कि वे पशुपालन और खास कर 'गोरक्षा' करें। वैश्य वर्ग त्रैवर्णिकों में तीसरे स्थानपर का है। जब पशु-पालन उनका भी कर्तव्य माना गया है, तब तो उच्च वर्णों में गो-हत्या का सम्भव ही नहीं है। गोरक्षा जैसे वैश्यों का कर्तव्य है वैसे ही वह दूसरे ऊंचे वर्णों का भी है। उपर्युक्त कहानी में बतलाया है कि राजा परीक्षितने-अर्थात् क्षत्रियने-बैल की रक्षा शूद्र से की। तब निश्चय हुआ कि गोरक्षा वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण तीनों वर्णोंका कर्तव्य है। अब बचा अधार्मिक शूद्र। वह धर्म-भ्रष्ट है, मह मांसाहारी है इसलिये गोरक्षा उसका कर्तव्य नहीं हो सकता। यदि वह गोरक्षा करे तो वह सत्शूद्र होवेगा। परन्तु हमें अभी साधारण शूद्रों के कर्तव्यों का विचार करना है। इन सबका विचार करने से कहना पडता है कि सामान्य-शूद्र गोरक्षा करने वाले न थे। वृषल शब्द यही बतलाता है और इसी को पुष्टि देने वाली भागवत की कहानी है।

तब मालूम हुआ कि गो मांस खाने वाले शूद्रही अन्त्यज हैं। जिस लोगोंने गोमांस खाना छोड दिया है उन्हें सत्-शूद्र समझना चाहिये।

वृष शब्द का अर्थ आगे चलकर 'नीति, सदाचार' हो गया। तब जिन लोगोंमें नीति या सदाचार का लय या अन्त हो गया हो उन्हे वृष-ल कहते हैं। परन्तु यह अर्थ उस समय के बाद का है जबसे कि इस शब्द का प्रयोग सत् शूद्रों के लिये होने लगा। इस प्रकार वृषल शब्द के दो भिन्न अर्थ हुए।

यदि इन दोनों अर्थों को एक साथही लें तब भी कोई हानि नहीं होती। 'अधर्म, अज्ञान, गोवध, वृषवध का' जहां संभव है वह वृषल अर्थात् शूद्र है।

'श्वपाच' शब्द से कुत्ते का मांस खाने वाले चांडालों का बोध होता है। यह भी शूद्रों में से एक उप-जाति है। अर्थात वे भी शूद्र ही हैं। अब तक जो बयान किया गया उससे शूद्र के उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ तीन भेद कर सकते हैं। जो उत्तम शूद्र हैं वे सत्-शूद्र हैं। इन को अधिकार है कि ये उपनयन संस्कार करा कर द्विजोंमें मिल जांय। इस भाग में वे शूद्र आते हैं जिन्होंने मद्य और मांस का त्याग किया है और जो स्वतंत्र व्यवसाय में लगे हैं। दूसरे भाग में वे लोग हैं जो नौकरी करते हैं, परावलम्बी हैं पर गोमांस को छोडकर दूसरा मांस खाते हैं और मद्यपान करते हैं। तीसरे कनिष्ठ भेद में वे आते हैं जो शांतता से नहीं रहते, दङ्गाफिसाद् करते हैं, डाका डालते हैं, और गोमांस खाते हैं। येही दस्यू हैं। उन्नति की सीढ़ी इस प्रकार है-- दस्यु से दास, दास से शूद्र और शूद्र से द्विज। इस भाग में दस्यू, दास और शूद्रों का वर्णन किया गया। अगले भाग में हम देखेंगे कि गुण-कर्म से वर्ण के विभाग कैसे माने जाते थे।

तीसरे प्रकार के शूद्रों को समाज से अलग इस लिये रखते थे कि उनसे समाज को उपद्रव होता था। यदि वे आचरण सुधारें तो वे फिर समाज में सम्मिलित हो जाते थे। यह क्रिया लुप्त हो गई इस लिये उनका हमेशाके लिये बहिष्कार किया गया होगा।

गुण-कर्म के अनुसार वर्णव्यवस्था।

भाग ७

(१) समाज व्यवस्था दो प्रकार की है, (१) वर्ण व्यवस्था और (२) जाति व्यवस्था। पिछली मर्दुमशुमारी से ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में चार हजार जातियां हैं। इस बात में मतभेद नहीं है कि प्राचीन काल में इतनी जातियां न थी। मेगास्थनीज चन्द्रगुप्त के समय हिंदुस्थान में आया था। उसने केवल पांच जातियों के विषय में लिखा है। उपनिषदों में या वेदों में केवल चारही जातियों का अथवा वर्णोंका बयान है। जंगली लोगों की पांचवीं जाति मानने की प्रथा बहुत प्राचीन काल से चली आती है। परंतु वर्तमान समयमें दिखनेवाले जातियों के हजारों भेद प्राचीन काल में बिलकुल न थे। उसमें भी विशेषता यह है कि अनेक भिन्न भिन्न व्यवसाय होने पर भी जाति भेद अधिक नहीं थे। इन चार हजार जातियों को यदि पूर्वोक्त चार या पांच जातियों में शामिल कर दें तो उनके विषय के विचार में सुभोता होगी। ये हजारों उपजातियां देश, प्रान्त, व्यवसाय और भाषा आदि की भिन्नता के कारण हुए हैं। इस लिये हम इन असंख्य भेदों का विचार न कर केवल मुख्य भेदोंका ही विचार करेंगे। अबतक जो विवेचन हुआ है उसके अनुसार मनुष्य समाज के नीचे लिखे भेद होते हैं—

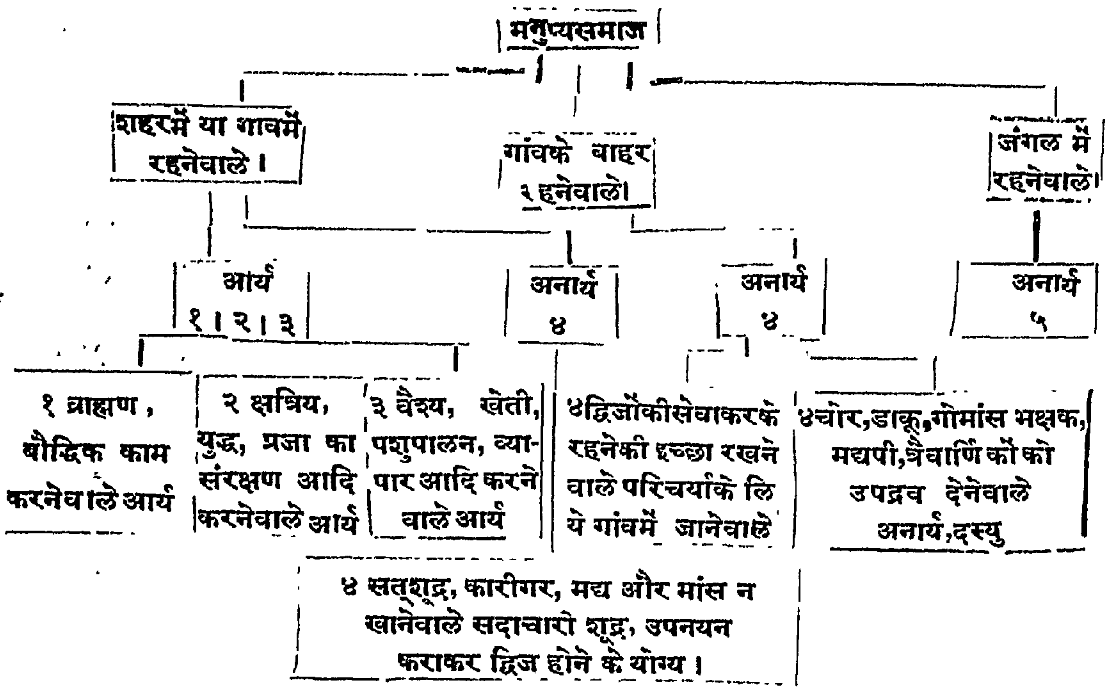
मनुष्यसमाज
शहरमें या गावमें रहनेवाले।
गांवके बाहर रहनेवाले।
जंगल में रहनेवाले।
आर्य १। २। ३
अनार्य ४
अनार्य ४
अनार्य ५
१ ब्राह्मण, बौद्धिक काम करनेवाले आर्य
२ क्षत्रिय, युद्ध, प्रजा का संरक्षण आदि करनेवाले आर्य
३ वैश्य, खेती, पशुपालन, व्यापार आदि करनेवाले आर्य
४ द्विजोंकीसेवाकरके रहनेकी इच्छा रखनेवाले परिचर्याके लिये गांवमें जानेवाले
४ चोर, डाकू, गोमांस भक्षक, मद्यपी, प्रैवार्णिकों को उपद्रव देनेवाले अनार्य, दस्यु
४ सत्शूद्र, कारीगर, मद्य और मांस न खानेवाले सदाचारी शूद्र, उपनयन कराकर द्विज होने के योग्य।

(२) मनुष्य समाज की चार जातियां शास्त्रकारोंने इस प्रकार की हैं। अब देखना चाहिये कि ये जातियां हाथी, बैल, घोडों की जातियों के समान स्वाभाविक हैं वा अस्वाभाविक। यदि जातिभेद कृत्रिम एवं कुछ कारण से थोडे समय तक रहनेवाला हो तो वह आज जैसा तीव्र न रहेगा; परन्तु यदि वह स्वाभाविक तथा जन्मसिद्ध होगा तो उचित यही होगा कि उसे तीव्र ही रखें। इस विषय में प्राचीन ग्रन्थकार और विद्वानों का कथन देखिये। भविष्य पुराण के इस ब्राह्मपर्व में इसप्रकार लिखा है-

चत्वार एकश्च पितुः सुताश्च तेषां सुतानां खलु जातिरेका।
एवं प्रजानां हि पितैक एव पित्रैकभावान् न च जातिभेदः ॥४५॥
फलान्यथोदुम्बरवृक्षजातेः यथाऽग्रमध्यान्तभवानि यान्ति।
वर्णाकृतिस्पर्शरसैः समानि तथैकतो जातिरतिप्रचिन्त्या ॥ ४६ ॥

भ० महापुराण ब्रा० अ. ४२

" यदि एक पिता के चार लडके हों, तो उन चारों की एक ही जाति होनी चाहिये। इसी प्रकार सब लोगों का पिता एक परमेश्वर ही है इस लिये मनुष्यसमाज में जातिभेद है ही नहीं। जिस प्रकार गूलर के वृक्ष में अग्रभाग, मध्यभाग और जडका भाग तीनों में एकही वर्ण, आकृति, स्पर्श और रंगके फल लगते हैं, उसी प्रकार (एक विराट् पुरुष के मुख, बाहु, ऊरु और पैर चार प्रत्यंगों से उत्पन्न हुए) मनुष्यों में (स्वाभाविक) जातिभेद कैसे माना जा सकता है ? "

इस प्रकार भविष्यपुराण में एक परमेश्वर पिता और एक मनुष्य जाति की कल्पना स्पष्ट शब्दों में अच्छी से अच्छी तरह बतायी गयी है। मनुष्य परमेश्वर स्वरूपी एकही वृक्षके फल हैं। तब उनमें जातिभेद कहां से आवेगा ? और जब भिन्न

जातीयां ही नहीं तो छूत अछूत कैसे मानी जा सकती है ? सब मनुष्यों का अधिकार एकसा है। इससे अधिक स्पष्ट शब्द से यह बतलाने वाला वचन नहीं मिल सकता कि जन्मसे न तो कोई नीच ही है और न उच्च। जिस प्रकार एक बाप के लडकों में जातिभेद नहीं रहता किन्तु भ्रातृप्रेम रहता है उसी प्रकार का प्रेम सब लोगों में रहना चाहिये। अंत्यजों को यदि अग्रजन्मा हीन समझें तो वह उतना ही निन्द्य होगा जितना कि बडा भाई छोटे भाई को नीच और अछूत समझने से होगा। और भी देखिये–

सप्तव्याधकथा विप्र मनुना परिकीर्तिता।
तां निशम्य द्विजश्रेष्ठ नित्यं जातिग्रहं त्यजेत् ॥ २६ ॥
ब्राह्मण्यमध्रुवमिदं किल कृत्रिमत्वात्
अकृत्रिमं भवति सामयिकत्वयोगात्।
सांकेतिकं सुकृतलेशविशेषलब्धम्
वाणिज्यभेषजकृतामिव जातिभेदाः ॥ ३२
किं ब्राह्मणा ये सुकृतं त्यजन्ति, किं क्षत्रिया लोकमपालयन्तः।
स्वधर्महीना हि तथैव वैश्याः शूद्राः स्वमुख्यक्रियया विहीनाः॥३४॥
तस्मान्न गोऽश्ववत् कश्चित् जातिभेदोऽस्ति देहिनाम्।
कार्यशक्तिनिमित्तस्तु संकेतः कृत्रिमो भवेत् ॥ ३५ ॥
एवं प्रमाणैः प्रतिषिध्यमानाम् सांकेतिकीं याति नरो व्यवस्थाम्।
स्वकीयसिद्धां स्वमतैर्निषिद्धाम् न बुध्यते मूढमना वराकः ॥३६॥
ब्राह्मणत्वाद विहीयन्ते दुराचारविधायिनः।
तस्मान्न जातिरेकत्र भूतात्मास्त्यनपायिनी ॥ ४४ ॥
ऽयहेण शूद्रो भवति ब्राह्मणः क्षीरविक्रयी।
सद्यः पतति मांसेन लाक्षया लवणेन च ॥ ४५ ॥

भविष्य, महा० पु० ब्रा० अ० ४०

" हे द्विजश्रेष्ठ ? मनुकी कही हुई सत्यव्याध की कहानी सुनो और यह समझ कर दूर कर दो कि " जाति हमेशा के लिये बनी है। " ब्राह्मण्य (ब्राह्मण आदि जातियां) कृत्रिम होने के कारण अ-ध्रुव है। जो सामयिक होगा वही अकृत्रिम रहेगा। विशेष सुकृतसे या अच्छे काम से जो मिला होगा वह कृत्रिम एवं थोडे समय के लिये ही मिला होगा। वाणिज्य और भैषज्य के भेद जिस प्रकार कृत्रिम रहते हैं, उसी प्रकार जातिभेद भी कृत्रिम हैं। जो सदाचारी नहीं वे काहेके ब्राह्मण? और जो लोगों का योग्य पालन नहीं करते वे क्षत्रिय भी किस प्रकार हैं ? अपने कर्तव्य को छोड देने वाले वैश्य किस प्रकार हैं, और अपना काम न करनेवाले शूद्र भी काहे के ? इसी लिये गाय, घोडों के समान मनुष्यों में जातिभेद नहीं है। कर्तव्य और शक्तिसे (गुण कर्म के कारण) वह माना जाता है अतएव कृत्रिम है। इस प्रकार के प्रमाणों से जिसका खंडन कर सकते हैं वही जातिभेद है और वह सांकेतिक है। स्वधर्म के अनुसार वह निषिद्ध है। फिर भी दुष्टबुद्धि लोग इसे नहीं जानते। दुराचारी लोग ब्राह्मण्य से भ्रष्ट हो जाते हैं इसी लिये अभेद्य जातिभेद तो है ही नहीं। ब्राह्मण यदि दूध बेचने लगे तो वह तीन दिन में शूद्र होता है और मांस, लाख और नमक के बेचने से उसी समय पतित हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि जातिभेद अभेद्य नहीं है।"

बाद का प्रश्न यह है कि क्या ब्राह्मण और अब्राह्मण जातियां अभेद्य हैं ? चांडाल जाति में जिनका जन्म है वे लोग चाहे कितने ही सदाचारी क्यों न हों क्या वे अछूत ही रहेंगे ? और ब्राह्मण जातिमें जन्म लेकर कितने ही दुष्ट कर्म करते रहनेपर भी क्या वे छूत रहेंगे ? इसका निश्चय करने के लिये पहले यह निश्चय कर लेना चाहिये कि जातिभेद कितना दृढ है ? गाय,

घोडे, हाथी, ऊंट आदि की जातियां जिस प्रकार दृढ हैं, वे जैसी अन्त तक बदलना संभव नहीं वैसी ब्राह्मण, क्षत्रिय या चांडाल जातियां नहीं हैं। ब्राह्मणत्व, क्षत्रियत्व वैश्यत्व और चांडालत्व अध्रुव, नैमित्तिक, सांकेतिक, या कृत्रिम है। जो बात नैमित्तिक रहती है वह उस निमित्त के न रहने से लुप्त हो जाती है। इसी प्रकार चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था नैमित्तिक है इस से वह अध्रुव अर्थात् अनित्य है। चातुर्वर्ण्य के निमित्त हैं विद्या, शौर्य, वणिग्वृत्ति और दासत्व। गुण-कर्म-स्वभाव के निमित्त से उत्पन्न हुआ चातुर्वर्ण्य उन निमित्तों के अभाव में कैसे रह सकेगा ? क्यों कि-

निमित्ताभावे नैमित्तिकस्याप्यभावः॥

वैशेषिक, अ० १

शास्त्रका सिद्धान्त है कि 'निमित्त के न रहने से उसके कारण उत्पन्न होनेवाला नैमित्तिक कार्य भी नष्ट हो जाता है।' श्रीमद्भागवत और महाभारत के आधार पर पहले बतलायाहीं गया है कि पहले पहल एकही वर्ण था। उपर्युक्त वचन के अनुसार जातिभेद कार्यशक्ति के कारण उत्पन्न हुआ है। यह बात बडे महत्व की है। जिसमें जैसी कार्यशक्ति होगी वैसे ही उसका वर्ण होगा। कृत्रिम भेदों से यदि इस कार्यशक्ति की वृद्धि में बाधा डाली जावे तो किसी भी समाज की अवनति अवश्य होगी। जातिभेद नैमित्तिक है इस लिये गुण विशेष के अभाव से वह नष्ट होता है। जिस निमित्त का सद्भाव होगा उसी के अनुसार जाति या वर्ण कहलावेगा। इसी लिये कहा है कि —

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैव च शूद्रताम्।
क्षत्रियो याति विप्रत्वं विद्याद्वैश्यं स्तथैव च॥ ४८॥

भविष्य पु० अ० ४०

"शूद्र ब्राह्मण बन जाता है और ब्राह्मण शूद्र।" ऊपर के श्लोक में यही बताया है कि चारों वर्ण नैमित्तिक हैं इस लिये गुण-कर्म के भेद से वे बदलते हैं। आगे के श्लोकों में बताया है कि एक मनुष्य जाति से चार वर्ण गुण-कर्म के भेद के कारण कैसे हुए या समझे गये –

ये वै परिग्रहीतारस्तेषां सत्त्वबलाधिकाः।
इतरेषां क्षतत्राणान् स्थापयामास क्षत्रियान् ॥ २० ॥
उपतिष्ठन्ति ये वै तान् याचन्ते शर्मदाः सदा।
सत्यं ब्रह्म सदा भूतं वदन्तो ब्राह्मणास्तु ते ॥२१ ॥
ये चान्येऽप्यबलास्तेषां वैश्य कर्माणि संस्थिताः।
कीलानि नाशयंति स्म पृथिव्यां प्रागतंद्रिताः ॥ २२ ॥
वैश्यानेव तु तानाह कीनाशवृत्तिमाश्रितान्।
शोचन्तश्च द्रवन्तश्च परिचर्यासु ये नराः ॥ २३ ॥
निस्तेजसोऽल्पवीर्याश्च शूद्रांस्तान् ब्रवीत्तु सः ॥२४॥
शिखा ज्ञानमयी यस्य चोपवीतं तपोमयम्।
ब्राह्मण्यं निष्कलं तस्य मनुः सायंभुवोऽब्रवीत् ॥ ३० ॥
यत्र वा तत्र वा वर्णे उत्तमाधममध्यमे।
निवृत्तः पापकर्मेभ्यो ब्राह्मणः स विधीयते ॥ ३१ ॥
शूद्रोऽपि ज्ञानसंपन्नो ब्राह्मणादधिको भवेत्।
ब्राह्मणो विगताचारः शूद्रात्प्रत्यवरो भवेत् ॥ ३२ ॥
न सुरां संधयेद्यस्तु आपणेषु गृहेषु च।
न विक्रीणाति च तथा सच्छूद्रो हि स उच्यते ॥३३ ॥
यद्येकास्फुटमेव जातिरपरा कृत्यात्परं मेदिनी
यद्वा व्याहृतिरेकतामधिगता यच्चान्यत्रमें ययौ।

एकैकाऽखिलभावभेदनिधनोत्पत्तिस्थिति व्यापिनी।
किं नाऽसौ प्रतिपत्तिगोचरपथं यायाद्विभक्त्या नृणाम्॥३४॥
भविष्य० म० पु० ४४

"जो लोग सत्व और बल के कारण बढे हुए थे और जिन्हों ने दूसरों की रक्षा करने का काम ले लिया, उन्हे क्षत्रिय नाम दिया। उसने कहा जो क्षत्रियों के पास जाते हैं और सत्य तथा ब्रह्मज्ञान का उपदेश हमेशा करते हैं वे ब्राह्मण कहे जावेंगे। जो लोग इन दोनों से कम बलवान थे और खेती करके रहने लगे उन्हे उसने वैश्य कहा। जो लोग शोक के कारण व्याकुल थे जिनमें तेज न था और जो अल्पवीर्य थे उन्हे उसने शूद्र कहा।"

"स्वायंभुव मनुने कहा कि जिसको ज्ञान मय शिखा है, तपोमय यज्ञोपवीत जिसके पास है उसका ब्राह्मणत्व परिपूर्ण है। उत्तम मध्यम वा कनिष्ठ वर्णों में से किसी में भी उसका जन्म क्यों न हुआ हो, यदि वह सब पापकर्मों से दूर रहा तो वह ब्राह्मण कहलाता है। शूद्र यदि ज्ञानी हो जावे तो वह ब्राह्मणोंसे भी श्रेष्ठ होता है; और यदि ब्राह्मण आचारभ्रष्ट होता है तो वह शूद्रों से भी नीच होता है। जो घर में या बाजार में मदिरा को स्पर्शभी नहीं करता या जे मदिरा बेचताभी नहीं उसे सत् शूद्र कहना चाहिये। यदि इस संसार में जन्मसिद्ध जातिभेद हो तो मनुष्यों के (बाह्य) चिन्हों से वह क्यों न प्रकट होता।' (अर्थात् जब वह नैसार्गिक चिन्होंसे व्यक्त नहीं होता तो वह जन्मसिद्ध नहीं है, नैमित्तिक है।)

(६) पूर्वोक्त वचन में अच्छी तरह बताया है कि वर्णभेद किस प्रकार माने गए। उसमें कथन है कि किसी भी कुल में जन्म हो तब भी यदि आचरण अच्छा हो तो उसे ब्राह्मण

कहना चाहिये। यदि आचरण को ही इतना महत्व है तो किसी भी कुल में जन्म होने से नुकसान ही क्या? शूद्र वा चांडाल कुल में उत्पन्न हुआ मनुष्य भी ब्राह्मणों की बराबरी पा सकेगा; इतना ही केवल नहीं, वरन् वह ब्राह्मण ही होगा। पूर्वोक्त पुराण के वचन से विदित होता है कि सत् आचार का इतना अधिक महत्व था। यह संभव नहीं कि इस प्रकार उच्चता को पहुंचे हुए मनुष्य को अछूत समझते हों। यही समझना ठीक है कि एक ही कुल में उत्पन्न हुआ मनुष्य जब ऊंचा होता है तब उसकी सब प्रकारकी उन्नति हुई। यही विचार अच्छा है कि जब तक हीन आचार था तब तक यद्यपि वह अछूत और दूर करने योग्य समझा गया हो तब भी उसका आचार सुधर जानेपर वह उच्च और छूत समझा जाना चाहिये। ऊपर के वचन में कहा है कि जो शूद्र मद्य नहीं पीते उनकी गिनती सत् शूद्रों में करनी चाहिये। तब कहनेकी आवश्यकता ही नहीं कि यदि कोई उच्च वर्ण के लोग मद्यपान करें तो वे अवनत होंगे। सत् शूद्र की पदवी बहुत ऊंची है। उनकी योग्यता इतनी बडी है कि उपनयन कराकर वे द्विज बन सकते हैं। तब जो सत् शूद्र बन गये वे अछूतसे भी मुक्त होगये। पहले अछूत आज जैसी नहीं थी। पर यदि मान लें कि अछूत थी, तब भी यह स्पष्ट है कि वह सदाचार से नष्ट हो जाती थी। जिस समय एक ही जन्म में वर्ण बदल सकता था, उस समय आज जैसी छूत अछूत कैसे हो सकती है? प्राचीन कालमें आचार को ही प्रधानता थी। इस विषय में और प्रमाण देखीये—

ब्राह्मणः पतनीयेषु वर्तमानो विकर्मस।
दांभिको दुष्कृतः प्राज्ञः शूद्रेण सदृशो भवेत्॥ १३॥

यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्मे च सततोत्थितः।
तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद् द्विजः ॥ १४ ॥
महा० भा० वन. अ. २१६।

अर्थात् 'जो ब्राह्मण दुष्ट कर्म करता है, जो दंभी, पापी और अज्ञानी है उसे शूद्र समझना चाहिये और जो शूद्र दम, सत्य और धर्म का पालन सर्वदा करता है, उसे मैं ब्राह्मण समझता हूं। क्यों कि सदाचारहीसे द्विजत्व प्राप्त होता है।'

उच्च वर्ण के लोग दुष्कर्म करने लगें तो वे गिर जाते हैं और नीचे वर्ण के लोग यदि सदाचार से चलें तो वे उच्च होते हैं। दांभिकता, पाप का आचरण और अज्ञान अधोगति के लक्षण हैं और सत्यप्रियता, सदाचार और ज्ञान उन्नति के लक्षण हैं। एक नीचे उतरने का मार्ग है, दूसरा ऊपर चढने का। जो लोग ऊपर हैं वे यदि नीचे आने वाले मार्गपर चलें तो वे नीचे आते हैं और नीचे के लोग यदि ऊपर जानेके रास्ते पर चलें तो वे ऊपर जावेंगे। यही नियम उपर्युक्त वचन में है। उस में कहा है 'सदाचार से ही द्विज होता है'। वह यही सिद्ध करने के लिये है कि शूद्र ही उन्नति करके द्विज होता है या अनार्य के आर्य हो सकते हैं। द्विज शब्द ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तीनों के लिए है। तब ' सदाचार से द्विज होता है' का अर्थ यही कि 'जो द्विज नहीं है वह अनार्य या शूद्र जब सदाचारशूद्र से रहने लगता है तब वह द्विज होता है'। पूर्वोक्त वचन में कहा कि शूद्रों में से सत्-शूद्र वे हैं जो मद्य, मांससेवन नहीं करते और जो वाणिज्य में भाग लेते हैं। इस से यह ध्वनित होता है कि साधारण सदाचार से शूद्र के वैश्य हो सकते हैं। इस प्रकार अन्त्यजों से सत्-शूद्र और सत्-शूद्रों से वैश्य या द्विज

बनने की इजाजत उपर्युक्त वचन से ध्वनित होती है। इससे मालूम होता है कि उस समय प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में यह भाव रहता था कि मैं सदाचार से बड़ा हो जाऊंगा। परन्तु आज कलके लोगोंमें कोई महत् आकांक्षा नहीं रहती। कारण यह कि वे जातिबंधन की दृढ शृंखला से जकडे हुए हैं और समझते हैं कि हम नीच वर्ण में उत्पन्न हुए हैं और इसी अवस्था में मरेंगे। यह स्पष्ट है कि जब तक जातिबंधन दृढ है तब तक छूत अछूत का भूत जिंदा ही रहेगा। इसी लिये सदाचारसे उच्च वर्ण में मनुष्य शामिल किया जा सकता है इसके लिए प्राचीन धर्मशील लोगों के जो वचन हैं उनपर ध्यान दीजिये।

यक्ष उवाच।

राजन् कुलेन वृत्तेन स्वाध्यायेन श्रुतेन वा।
ब्राह्मण्यं केन भवति प्रब्रूह्येतत् सुनिश्चितम् ॥ ७ ॥

युधिष्ठिर उवाच।

शृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम्।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः ॥ ८ ॥
वृत्तं यत्नेन संरक्ष्यं ब्राह्मणेन विशेषतः।
अक्षीणवृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥ ९ ॥
पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिंतकाः।
सर्वे व्यसनिनो मूर्खा यः क्रियावान् स पंडितः ॥ १० ।
चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः स शूद्रादतिरिच्यते।
योऽग्निहोत्रपरो दान्तः स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥ ११ ॥

महाभारत वन० अ० १३

यक्ष ने कहा,- "हे राजा! कुल, सदाचार, स्वाध्याय और श्रुत में से किससे मनुष्य को ब्राह्मणत्व मिल सकता है? मुझे

निश्चित रूपसे बतलाइए।" यह प्रश्न सुनकर धर्मराज बोले, –"ऐ यक्ष! सुन। ब्राह्मणत्व के लिए कुल, स्वाध्याय और श्रुत में से किसी की भी आवश्यकता नहीं है। यह निश्चय जानो कि ब्राह्मणत्व सदाचार से ही मिलता है। विशेषतः ब्राह्मण को चाहिए कि वह सदाचार के विषय में बहुत सावधान रहे। जिसने सदाचार का त्याग नहीं किया वह क्षीण नहीं होता, परन्तु जिसने सदाचार त्याग दिया वह मरे के समान है। उन सब को व्यसनी जानो जो अध्ययन, अध्यापन और शास्त्रकी चिन्ता करते रहते हैं (पर आचरण अच्छा नहीं रखते)। जो सदाचारी हैं वही सच्चा पंडित है। चार वेदों को जानने वाला भी यदि दुराचारी है तो वह शूद्रसे भी हीन है और ब्राह्मण वही है, जो अग्निहोत्र करने वाला और शम दम से युक्त हो।"

इस वचनमें कहा है कि ब्राह्मणत्व का कारण जन्म नहीं किन्तु आचरण है। इसी प्रकार वैश्य, क्षत्रिय आदि के विषय में जानना चाहिये। सदाचार से न चलने वाला ब्राह्मण शूद्र हो जाता है और सदाचार से चलनेवाला शूद्र ब्राह्मण हो जाता है। ऐसे समय में किसी खास जाति में जन्म होने के कारण उस जाति के सब लोग कैसे बहिष्कृत हो सकते हैं? इस बात का प्रमाण कहीं भी नहीं पाया जाता कि प्राचीन काल में आज जैसा मत प्रचलित था कि किसी खास जातिमें उत्पन्न हुए सब लोग हीन, अस्पृश्य एवं बहिष्कृत हैं फिर वे कितने ही अच्छे आचरण-वाले क्यों न हों। यह बात सत्य है-कि उस समय चार वर्ण माने जाते थे; पर वे एकही जिंदगीमें आचरण के कारण बदलने वाले थे। उस समय लोगों की समझ थी कि धर्माचरण उन्नति का साधन है और इसी लिये जन्म को उच्चता का लक्षण नहीं मानते थे। यही बात नहुष और युधिष्ठिर के संवाद में विस्तारसे आयी है–

नहुष उवाच।

जात्या कुलेन वृत्तेन स्वाध्यायेन श्रुतेन वा।
ब्राह्मणः केन भवति तेद् ब्रूह्युद्धिनिश्चयम् ॥३८॥

युधिष्ठिर उवाच।

न जातिर्न कुलं तात न स्वाध्यायः श्रुतं न च।
कारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेतस्य कारणम् ॥३९॥
अनेकमुनयस्तात तिर्यग्योनिमुपाश्रिताः।
स्वधर्माचारनिरता ब्राह्मलोकमितो गताः ॥४०॥
बहुधा किमधीतेन नरस्येव दुरात्मनः।
तेनाधीतं श्रुतं तेन यो वृत्तमनुतिष्ठति ॥४१॥
वृत्तं यत्नेन रक्ष्यं स्यात् वित्तमेति च याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥४२॥
किं कुलेनोपदिष्टेन विपुलेन दुरात्मना।
कृमयः किं न जायन्ते कुसुमेषु सुगंधिषु ॥४३॥
तस्माद्विद्धि महाराज वृत्तं ब्राह्मणलक्षणम्।
चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः शूद्रात् पापतरः स्मृतः ॥४४॥
योऽग्निहोत्रपरो दान्तः संतोषनियतः शुचिः।
तपः स्वाध्यायशीलश्च तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥४६॥
परेषां तु गुणान्वेषी सततं पुरुषर्षभ।
सतोऽपि दोषान् राजेन्द्र न गृह्णाति कदाचन ॥४७॥
दीनानुकंपी सततं सततं साधुवत्सलः।
यः स्वदाररतश्चैव तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥४८॥

—महाभारत.

नहुष ने कहा,— हे धर्मराज ! मुझे बताइए कि जाति, कुल, सदाचार, स्वाध्याय और श्रुत में से किस के कारण मनुष्य

ब्राह्मण होता है? तब युधिष्ठिर बोले--हे नहुषराज! द्विजत्व का कारण जाति, कुल, स्वाध्याय या श्रुत में से एक भी नहीं है, उसका कारण है सदाचार। अनेक मुनि हीन जाति में जन्म लेकर भी स्वधर्म के आचरणसे ब्रह्मलोकको पहुंचे। नाटक के नट के अनुसार दुष्ट आचरण करनेवाला मनुष्य कितना ही अधिक अध्ययन करे तो उससे लाभ कुछ नहीं। जो मनुष्य सदाचारी है उसी ने अध्ययन किया और उपदेश सुना है। जिस प्रकार धन आता है और जाता है वैसा सदाचार नहीं है। सदाचार के रक्षण में हमेशा दत्तचित्त रहना चाहिये। यदि कोई मनुष्य निर्धन हो तो उसे निर्बल नहीं कह सकते पर यदि वह आचारहीन हो तो वह मरेके समान है। जो दुराचारी है उसके कुलसे क्या वास्ता? क्या सुगंधी फूलों में कीडे नहीं होते? इस लिये सदाचार को ही ब्राह्मणत्व का लक्षण जानो। चार वेद जाननेवाला भी यदि दुराचारी हो तो उसे शूद्र के सदृश नीच समझना चाहिए। जो अग्निहोत्र करता है, शमदमयुक्त है, हर-हमेश संतुष्ट और शुद्ध रहता है, तप और स्वाध्याय करता है, द्वंद्व सहन करता है, जो सब की आसक्ति छोडने वाला, सर्वभूत-हित करनेवाला, सब का मित्र, शत्रुसे भी गुण लेने वाला, सज्ज-नों के दोष न लेनेवाला, दीनोंपर दया करनेवाला, सज्जनोंका हित करनेवाला और जो स्व-दार-रत व्यभिचार न करनेवाला है वही ब्राह्मण है।"

इस वचनमें ब्राह्मण का लक्षण विस्तारसे बताया गया है। जाति अर्थात् उच्च कुलमें जन्म होना द्विजत्व ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य होने-का सच्चा कारण नहीं है। उपर्युक्त वचनमें स्पष्ट शब्दों में कहा है कि द्विज होने के लिए सदाचार ही कारण है। जो लोग जातिका महत्व अधिक मानते हैं उन्हे इस बात पर

ध्यान देना चाहिए कि सुगंधित फूलों में कीडे उत्पन्न होते हैं और कुल और जातिकी महत्ता अधिक नहीं। यदि जातिबंधन अभेद्य होता तो व्यासजी की कलमसे ऐसे वचन कदापि न लिखे जाते। यदि मान लिया कि जाति के कारण कुछ अनुकूल वा प्रतिकूल परिस्थिति प्राप्त होती है, तब भी स्वकर्तव्य की शक्ति कम नहीं होती। निम्न लिखित वचन में बताया है कि गुणकर्मसेही चारों वर्ण पहिचानना चाहिए—

सर्प उवाच।

ब्राह्मणः को भवेद् राजन् वेद्यं किं च युधिष्ठिर।
ब्रवीह्यतिमतिं त्वां हि वाक्यैरनुमिमीमहे॥ २०॥

युधिष्ठिर उवाच।

सत्यं दानं क्षमा शीलं आनृशंस्यं तपो घृणा।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः॥ २१॥
वेद्यं सर्प परं ब्रह्म निर्दुःखमसुखं च यत्।
यत्र गत्वा न शोचन्ति भवतः किं विवक्षितम्॥ २२॥

सर्प उवाच।

चातुर्वर्ण्यं प्रमाणं च सत्यं च ब्रह्म चैव हि।
शूद्रेष्वपि च सत्यं च दानमक्रोध एव च॥
आनृशंस्यमहिंसा च घृणा चैव युधिष्ठिर॥ २३॥
वेद्यं यच्चात्र दुर्वृत्तं असुखं च नराधिप।
ताभ्यां हीनं परं चान्यत् न तदस्मीति लक्षये॥ २४॥

युधिष्ठिर उवाच।

शूद्रे तु यद् भवेल्लक्ष्यं द्विजे तच्च न विद्यते।
स वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः॥ २५॥
यत्रैतल्लक्ष्यते सर्प वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः।

यत्रैतन्न भवेत् सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत् ॥ २९ ॥

सर्प उवाच।

यदि ते वृत्ततो राजन् ब्राह्मणः प्रसमीक्षितः।
वृथा जातिस्तदायुष्मन् कृतिर्यावन्नविद्यते ॥ ३० ॥

युधिष्ठिर उवाच।

जातिरत्र महासर्प मनुष्यत्वे महामते।
संकरात्सर्ववर्णानां दुष्परीक्ष्येति मे मतिः ॥ ३१ ॥
सर्वे सर्वास्वपत्यानि जनयन्ति सदा नराः।
वाङ्मैथुनमथो जन्म मरणं च समं नृणाम् ॥ ३२ ॥
इदमार्षं प्रमाणं च ये यजामहे इत्यपि।
तस्माच्छीलं प्रधानेष्टं विदुर्ये तत्त्वदर्शिनः ॥ ३३ ॥
प्राङ्नाभिवर्धनात्पुंसो जातकर्म विधीयते।
तत्रास्य माता सावित्री पितात्वाचार्य उच्यते ॥ ३४ ॥
तस्माच्छूद्रसमो ह्येष यावद्वेदे न जायते।
तस्मिन्नेवं मतिद्वैधे मनः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ॥ ३५ ॥
कृतकृत्याः पुनर्वर्णा यदि वृत्तं न विद्यते।
संकरस्त्वत्र नागेंद्र बलवान् प्रसमीक्षितः ॥ ३६ ॥
यत्रेदानीं महासर्प संस्कृतं वृत्तमिष्यते।
तं ब्राह्मणमहं पूर्वमुक्तवान् भुजगोत्तम ॥ ३७ ॥

महाभारत वन० अ० १८०

सर्पने कहा,—"हे धर्मराज! कृपाकर मुझे बताइए कि ब्राह्मण कौन है और क्या जानना चाहिए?"

धर्मराज ने कहा — जिस पुरुष में सत्य, दान, क्षमा,, शील, दया, तप, घृणा आदि गुण होंगे, उसे ब्राह्मण कहना चाहिए। हे सर्प! जहां जाने से शोक नहीं होता, इस प्रकार के सुखदुःख-

रहित परब्रह्म को ही जानना है।"

सर्प० — "हे धर्मराज ? मैं आपसे सुन चुका कि चातुर्वर्ण्य का निश्चय करने में सत्य आदि गुण ही प्रमाणभूत हैं, और परब्रह्म को जानना चाहिये। परन्तु अब मुझे एक संदेह होता है कि शूद्र में भी सत्य, दान, अक्रोध, दया, अहिंसा, घृणा आदि गुण दिखते हैं, तब क्या उसे भी ब्राह्मण कहें ?"

धर्मराज०— "यदि शूद्र में वे लक्षण दिखते हैं और ब्राह्मण में नहीं, तो वह शूद्र शूद्र नहीं है और वह ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं है। जिसमें ये लक्षण विद्यमान हैं उसीको ब्राह्मण और जिसमें इन गुणों का अभाव है उसीको शूद्र समझना चाहिये।

सर्प०—"हे धर्मराज ! यदि आपके कथन के अनुसार आचरण से ही ब्राह्मण पहिचाना जावे, तो जब तक आचरण नहीं है तब तक जातियों का होना व्यर्थ है !"

धर्मराज० — "हे सर्पश्रेष्ठ ! मैं समझता हूं कि इस समय सब वर्णों का संकर हो गया है। इससे यह निश्चित करना कठिन है कि अमुक मनुष्य की जाति अमुक है। सब वर्णोंके लोग सब वर्णोंकी स्त्रियों में संतान उत्पन्न करते हैं और सब मनुष्यों के लिए भाषा, मैथुन, जन्म तथा मरण समान है। तत्त्वज्ञानी लोग आर्ष प्रमाणों के स्थान में शीलही प्रमाण मानते हैं। जातिबंधन के पूर्व मनुष्य का जातकर्म करना पडता है। उस समय कहा जाता है कि उसकी माता सावित्री है और पिता आचार्य है। इसी लिए स्वायंभू मनुजी का कथन है कि जब तक मनुष्य वेदों का अध्ययन नहीं करता तब तक वह शूद्र के ही समान है। यदि आचार को प्रधानता नहीं देना है तो वर्णभेद कृतकृत्य होवे (अर्थात् उसके रहने से क्या लाभ ?) इसी लिए मैंने पहले आपसे कहा था कि जिसमें वृत्त, शील तथा सदाचार पाए जांय उसीको ब्राह्मण कहना चाहिए"।

जब इस संवाद को पढने से हमें मालूम हो जाता है कि चातुर्वर्ण्य नैमित्तिक है । इससे स्पष्ट है कि धर्मराज उस गुणकर्म को मानने के लिए तैयार नहीं थे जो जाति के कारण उत्पन्न होते हैं । उपर्युक्त महाभारतके संवादसे मालुम होता है कि धर्मराज तथा वेदव्यास के समय बडा वर्ण संकर हुआ था। इस प्रकार के वर्ण-संकर के समय कुलपरसे जाति निश्चित नहीं की जा सकती । इस लिए वर्ण निश्चित करने के लिए उस मनुष्य के गुणों पर ही दृष्टिक्षेप करना आवश्यक होता है इस बात का कहीं भी प्रमाण नहीं मिलता कि वेदव्यास जी के समय का वर्ण संकर नष्ट होकर चातुर्वर्ण्य व्यवस्था की स्थापना फिर से हुई है । वर्तमान समय में वर्ण संकर उस समय की अपेक्षा कहीं अधिक हुआ है । ऐसे समय जातियों के विषय में कोई भी व्यवहार निश्चित नहीं किया जा सकता । वे व्यक्तिगत गुणकर्म से ही निश्चित करने होंगे । उपर्युक्त वचन से स्पष्ट होता है कि किस मनुष्य का कौन वर्ण है यह बात उसके गुण-कर्म से ही निश्चित करना चाहिए। इस प्रकार की प्राचीन आर्ष परंपरा है । वर्तमान समय में उसीका प्रयोग करना सर्वथा उचित है। स्मरण रखने योग्य बात है जो कि धर्मराज ने कही है–जन्मतः शूद्र में भी यदि ब्राह्मण के लक्षण पाए जांय तो उसे ब्राह्मण ही समझना चाहिए । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा चाण्डाल उपाधियां हैं । पूर्वोक्त वचन से प्रतीत होता है कि वे गुण-कर्म स्वभाव के अनुसार मिलती थीं । यदि जाति के अनुसारही प्रबंध हो तो 'अमुक लक्षणों से से अमुक वर्ण पहिचानो' आदि कथन वृथा है । प्रचलित प्रथाके समान और कर्म हों वा न हों जन्म से ही जाति का निश्चय करने की प्रथा यदि प्राचीन कालमें होती तो ग्रंथों में 'अमुक गुण जिस मनुष्य में हों उसे अमुक वर्ण का जानो आदि वचन न आते। नीचे

लिखे वचन में चारों वर्णों के लक्षण बताए गए हैं—

भरद्वाज उवाच ।

ब्राह्मणः केन भवति क्षत्रियो वा द्विजोत्तम ।
वैश्यः शूद्रश्च विप्रर्षे तद् ब्रूहि वदतां वर ॥ १ ॥

भृगुरुवाच ।

जातकर्मादिभिर्यस्तु संस्कारैः संस्कृतः शुचिः ।
वेदाध्ययन संपन्नः षट्सु कर्मस्ववस्थितः ॥२॥
शौचाचारस्थितः सम्यक् विघसाशी गुरुप्रियः ।
नित्यव्रती सत्यपरः स वै ब्राह्मण उच्यते ॥३॥
सत्यं दानमथाऽद्रोह आनृशंस्यं त्रपा घृणा ।
तपश्च दृश्यते यत्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥४॥
क्षत्रजं सेवते कर्म वेदाध्ययनसंगतः ।
दानादानरतिर्यस्तु स वै क्षत्रिय उच्यते ॥५॥
विशत्याशु पशुभ्यश्च कृष्यादानरतिः शुचिः ।
वेदाध्ययनसंपन्नः स वैश्य इति संज्ञितः ॥६॥
सर्वभक्षरतिर्नित्यं सर्वकर्मकरोऽशुचिः ।
त्यक्तवेदस्त्वनाचारः स वै शूद्र इति स्मृतः ॥७॥
शूद्रे चैतद् भवेल्लक्ष्यं द्विजे तच्च न विद्यते ।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो ब्राह्मणो न च ॥

—महाभारत शांति. अ० १८९

भरद्वाज ऋषिने भृगुऋषिसे कहा हे ब्रह्मर्षि ! आप मुझे बताइए कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र किस से बनते हैं ?

भृगु ऋषिने कहा– हे भरद्वाज ऋषि ! जिसपर जातकर्म आदि संस्कार हुए हैं, जो शुद्ध है, जिसने वेदाध्ययन किया है, जो षट्कर्म करता है, जो यज्ञ करने के बाद बचा हुआ अन्न

खाता है, जो शुद्ध आचरण से रहता है, जिसको गुरु चाहता है, जो नियमशील, सत्यनिष्ठ, दानशील, अद्रोही, दयालु, सलज्ज, घृणा करने वाला तथा तपस्वी है, उसी को ब्राह्मण कहते हैं। जो क्षात्रकर्म करता है जो वेदाध्ययन करता है, तथा जो उदार है, उसे क्षत्रिय कहना चाहिये। जो पशुपालन करता है, कृषि करता है शुद्ध और आदानशील है तथा जो वेदाध्ययन करता है, उसे वैश्य संज्ञा है। जो सब चीजें भक्षण करता है, जो सब काम करता है, जो मलिन है, जिसने वेदको त्याग दिया है, तथा जो दुराचारी है उसे शूद्र कहते हैं, यदि ये चिन्ह शूद्र में न हों और ब्राह्मण में हों, तो वह शूद्र शूद्र नहीं और ब्राह्मण ब्राह्मण नहीं।

पहले क्षत्रियों का संवाद दिया था। अब ब्राह्मणों का संवाद दिया है। मालूम होता है कि महाभारत के समय सब वर्णों के लोग इस प्रश्न पर विचार करते थे। उपर्युक्त वचन से ज्ञात होता है कि क्षत्रियों के सदृश ब्राह्मणों का भी मत उदार था। क्षत्रिय राज्यपद से उन्मत्त न थे। किन्तु नीची जातियों का उत्थान करने में तत्पर थे इसी प्रकार ब्राह्मण भी अपनी धार्मिक महत्ता के कारण उन्मत्त नहीं हुए थे वरन् सब लोगों को एक ही कसौटी पर कसते थे। ऊपर लिखे वचन में निश्चित-रूप से कहा है कि लक्षणों से ही चातुर्वर्ण्य का निश्चय होना चाहिये। उस वचन में भृगु ऋषि का कथन है कि शूद्र उसी मलिन मनुष्य को कहना चाहिए जो भक्ष्य - अभक्ष्य, पेय-अपेय का विचार छोडकर, वेद का अध्ययन छोडकर, दुराचार से रहता है। ये नहीं कहते कि जन्म से या जाति से किसी को शूद्र समझो। ऊपर के श्लोक में कहा है, "जिसने वेदोंका

परित्याग किया, उसे शूद्र कहो"। इस से ध्वनि निकलती है कि शूद्रोंके वा अनार्यों के आर्य अथवा त्रैवर्णिक अवश्य बनते होंगे। वेद छोड देने से शूद्रत्व तथा वेदों का अध्ययन करनेसे द्विजत्व आता था और सब लोगों को वेद का अध्ययन करने की सुभीता थी। उस समय लोगों में इतनी उदारता अवश्य थी कि यदि शूद्रों में ब्राह्मण के लक्षण दीख पडते तो वे उसे ब्राह्मण कहते थे। ऐसे समय संभव नहीं है कि कोई एक वर्ण पूर्ण रीतिसे अछूत एवं व्यवहार के लिए सर्वथा अयोग्य हो। ऊंचे वर्ण के लोग भी हीन कर्म के कारण नीचे ढकेल दिए जाते थे तथा आचरण सुधारनेपर नीची जाति के लोग भी ऊपर ले लिए जाते थे। धेड अथवा चांडाल जाति में उत्पन्न हुआ मनुष्य भी आचरण सुधार लेने पर प्राचीनकाल में ब्राह्मण बन सकता था!! वाचकों को सोचना चाहिये क्या ऐसे समता के समय धेड चांडाल आदि वर्ण सदाके लिए बहिष्कृत रह सकते थे? पूर्वोक्त वचनों के आधार से कहना होता है कि कोई भी वर्ण बिलकुल अछूत न था। उसी प्रकारः-

> वर्णोत्कर्षमवाप्नोति नरः पुण्येन कर्मणा।
> दुर्लभं तमलब्ध्वा हि हन्यात् पापेन कर्मणा ॥ ५ ॥
>
> महाभारत शांति० अ० २९१

(४) " पुण्य के काम करने से ऊंचा वर्ण प्राप्त होता है, तथा पाप के काम करने से ऊंचा वर्ण नहीं मिलता वरन् नीचता प्राप्त होती है।"

इस को पढकर कह सकते हैं कि प्रत्येक मनुष्य की यह भावना थी कि यदि हम आचरण सुधार लें-यदि हम सदाचार से चलें-तो हमारी उन्नति होगी। प्राचीन समय में वर्तमान के समान यह हाल न था कि कितना भी आचरण सुधार लो पर अछूत दूर

न होगी । छूत अछूत पर विचार करने के लिए यह बात ध्यान में रखना आवश्यक है ।

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैव शूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥
मनुस्मृति ।

" शूद्र मनुष्य को ब्राह्मणत्व मिलता है और ब्राह्मण को शूद्रत्व मिलता है ।'

उसी तरह:-

स्वाध्यायेन जपैर्होमैः त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥
मनु० २।२८

" स्वाध्याय, जप, होम, त्रयी विद्या, इज्या, सोम, महायज्ञ तथा यज्ञ से शरीर ब्राह्मीय किया जाता है ।" उसी प्रकार—

जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते
वेदाभ्यासी भवेद्विप्रः ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः ॥

अर्थात् " जन्मतः मनुष्य शूद्र रहता है, वह संस्कार के कारण द्विज कहलाता है। यदि वह वेद का अध्ययन करनेवाला हो तो वह विप्र होगा । जो ब्रह्मको जानता है वही ब्राह्मण है । "

इस प्रकार के वचनों का मिलान करने पर कहना ही पडता है कि जन्म से गुण तथा कर्म कोही अधिक प्रधानता है। जन्मतः सब लोग शूद्र ही होते हैं, पर उन पर जैसे जैसे संस्कार होते जाते हैं वैसे वे द्विजत्त्व, विप्रत्व तथा ब्राह्मणत्त्व को प्राप्त करते हैं । अब तक महाभारत के जितने वचन दिए गए हैं उन सब का सारांश यही है । संस्कृति से उन्नति होती है इत्यादि मानना ही धर्म है और यही सुधार का चिन्ह है । साथ ही यह भी

आवश्यक है कि संस्कार करा लेने के लिए हरएक को इजाजत रहनी चाहिए । यदि नियम बनाया जाय कि वेदका अध्ययन करनेसे तथा कुछ और बातें करनेसे अमुक वर्ण हो जावेगा और साथ ही साथ समाज के कुछ ऐसे बंधन बना दिए जांय जिस से कुछ आचारों को रुकावट हो जावे तो पहला नियम बिलकुल बेकाम हो जावेगा । तब यह बात ठीक मालूम होती है कि जिस समय लोगों में यह उदारता थी कि यदि शूद्रों में ब्राह्मण के गुण दिखे तो वे उसे ब्राह्मण समझते थे, उस समय हर एक मनुष्य उन साधनों को प्राप्त कर सकता था जिन से वे गुण उस में आ जावें। इस प्रकार के साधन हरएक को मिल सकते थे और उनका उपयोग करके लोग नीच कुल में उत्पन्न होने पर भी उच्च वर्ण के बन जाते थे । इसके लिए कई दृष्टांत हैं । देखिए:–

आचारमनुतिष्ठन्तो व्यासादिमुनिसत्तमाः ।
गर्भाधानादिसंस्कारकलापरहिताः स्फुटम् ॥ २०
विप्रोत्तमाः श्रियं प्राप्ताः सर्वलोकनमस्कृताः ।
बहवः कथ्यमाना ये कतिचित्तान् निबोधत ॥ २१
जातो व्यासस्तु कैवर्त्याः श्वपाक्याश्च पराशरः।
शुक्याः शुकःकणादाख्यस्तथोलूक्याः सुतोऽभवत् ॥
मृगीजोऽथर्षशृंगोऽपि वसिष्ठो गणिकात्मजः।
मंदपालो मुनिश्रेष्ठो लाविकापत्यमुच्यते ॥ २३ ॥
मांडव्यो मुनिराजस्तु मंडूकीगर्भसंभवः ।
बहवोऽन्येऽपि विप्रत्वं प्राप्ता ये पूर्ववद् द्विजाः ॥ २४ ॥
हरिणीगर्भसंभूत ऋष्यशृंगो महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ॥ २५ ॥

श्वपाकीगर्भसंभूतः पिता व्यासस्य पार्थिवः ।
तपसा ब्राह्मणो जातः संस्कारस्तेन कारणम् ॥ २६ ॥
भविष्य महापुराण, ब्राह्म अ० ४२

" व्यास आदि मुनि आचार से अच्छे थे, इसलिए ' गर्भाधान ' आदि संस्कार न होने पर भी सब लोग उन्हे पूजनीय समझते थे और वे अच्छे ब्राह्मण बन गए। इस प्रकार नीच कुलमें पैदा होकर भी उच्च वर्ण में पहुंचनेवाले बहुत हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं। कैवर्त (धीवर) स्त्री से व्यासजी का जन्मा है, श्वपाक (चांडाल) स्त्री से पराशर मुनि का जन्म हुआ, शुकी से शुक हुए और उलूकी से कणाद हुए। हिरनीसे श्रृंग-ऋषि हुए तथा गणिका से वसिष्ठजी हुए। मुनियों में श्रेष्ठ मंदपाल मुनि लाविका से हुए। मंडुकी से मांडव्य हुए और भी कई लोग हीन कुल में जन्म होकर भी विप्र हुए। ऋष्यश्रृंग का जन्म एक हिरनी से है पर वह तप के कारण ब्राह्मण बन गए। कारण यह की संस्कार मुख्य है। श्वपाकी (चांडाल स्त्री) से उत्पन्न होने पर भी पराशर तपके कारण ब्राह्मण बन गए; कारण यह कि संस्कार मुख्य है। "

उपर्युक्त भविष्य पुराण से उद्धृत वचनों से ज्ञात होता है कि अनेक लोग हीन जाति में उत्पन्न होने पर भी उच्च पदवी को प्राप्त कर चुके और इस घटना का कारण है संस्कार। चांडाल स्त्री से पैदा हुए पराशरजी का उपनयन संस्कार हुआ और उन्होंने वेद का भी अध्ययन किया। धीवरीसे पैदा हुए व्यासजी का उपनयन हुआ और उस समय के ब्राह्मणों ने उन्हे वेद भी सिखाए।

इस प्रकार की घटनाएं कदापि न होतीं यदि उन दिनों में ये नीच जातियां ऐसी अछूत होतीं जैसी आज हैं। अंत्यज जाति में उत्पन्न हुए एक बालक का उपनयन कराना तो बहुत दूर की बात है, परन्तु कितने शोक की बात है एकही स्थान में विद्या-ध्ययन भी नहीं हो सकता। इस प्रकार सिद्ध हो गया कि इस जातिपर पहले बहिष्कार न था। इसी प्रकार—

इंद्रो वै ब्रह्मणः पुत्रः क्षत्रियः कर्मणा भवत्।
ज्ञातीनां पापवृत्तीनां जघान नवतीर्नव ॥ ११ ॥

महाभारत शांति अ. २२

"इन्द्र वास्तव में ब्राह्मण का लडका था। तिसपर भी वह अपने कर्मोंसे क्षत्रिय बन गया। उसने दुष्ट आचरण करने वालों की निन्यानवे जातियां नष्ट कीं।" अर्थात् उच्चवर्ण के लोग अपने गुण तथा कर्मों के कारण नीची जाति में भी जाते थे। देखिए—

जनक उवाच।

यत्र तत्र कथं जाताः स्वयोनिं मुनयो गताः।
शुद्रयोनौ समुत्पन्नाः वियोनौ च तथाऽपरे ॥ ११ ॥

पराशर उवाच।

राजन्नैतद् भवेद् ग्राह्यमपकृष्टेन जन्मना।
महात्मनां समुत्पत्तिः तपसा भावितात्मनाम् ॥ १२ ॥
उत्पाद्य पुत्रान् मुनयो नृपते यत्र तत्र ह।
स्वेनैव तपसा तेषां ऋषित्वं विदधुः पुनः ॥ १३ ॥
पितामहश्च मे पूर्वं ऋष्यशृंगश्च कश्यपः।
वेदस्तांड्यः कृपश्चैव कक्षीवत् कमठादयः ॥ १४ ॥

यवक्रीतश्च नृपते द्रोणश्च वदतां वरः।
आयुर्मतंगो दत्तश्च द्रुपदो मात्स्य एव च ॥ १५ ॥
एते स्वां प्रकृतिं प्राप्ता वैदेह तपसाश्रयात्।
प्रतिष्ठाता वेदविदो दमेन तपसैव हि ॥ १६ ॥
मूलगोत्राणि चत्वारि समुत्पन्नानि पार्थिव!
अंगिराः कश्यपश्चैव वसिष्ठो भृगुरेव च ॥ १७ ॥
कर्मतोऽन्यानि गोत्राणि समुत्पन्नानि पार्थिव ॥
-- महाभारत शांतिपर्व. अ० २९६

जनक राजाने कहा, "हे पराशर ऋषि! किसीभी योनी में उत्पन्न हुए मनुष्य श्रेष्ठत्व कैसे प्राप्त कर सके? शुद्र योनी में उत्पन्न हुए तथा हीन योनीमें उत्पन्न हुए एकही समान श्रेष्ठ किस प्रकार बने?"

पराशर ऋषिने कहा — 'हे राजा! नीच कुलमें जन्म होने पर भी तपस्या के बल से उच्च पद मिल सकता है। अनेक मुनियों ने मन चाहा वहीं पुत्र उत्पन्न किए और उन्हे तप के बल से ऋषि बनाया। मेरे नाना शृंग ऋषि, कश्यप, वेद, तांडय, कृप, कक्षीवान्, कमठादि ऋषि, यवक्रीत, द्रोण, आयु, मतंग, दत्त, द्रुपद, मात्स्य, आदि सब ऋषि नीच कुल में उत्पन्न हुए थे। तिस पर भी तपके आश्रय से तथा वेदों का अध्ययन करने से वे श्रेष्ठता को प्राप्त कर सके। वास्तव में पहले केवल चार गोत्र थे अंगिरा, काश्यप, वसिष्ठ तथा भृगु। इनके सिवा जो दूसरे हुए वे सब कर्म करके बडप्पन प्राप्त किए हुए हैं।'

इन चार गोत्रों में से वसिष्ठ का जन्म एक गणिका से है और ऊपर आया ही है कि काश्यप हीन कुलमें उत्पन्न हुए हैं। तब नहीं कह सकते कि ये चारों गोत्र उच्च कुलोत्पन्न थे। किसी भी

जाति की स्त्री को लडका होवे वह उच्च वर्ण का बन सकता था। इसी लिए कहा है—

एभिस्तु कर्मभिर्देवी शुभैराचरितैस्तथा ।
शूद्रो ब्राह्मणतां याति वैश्यः क्षत्रियतां तथा ॥ २६ ॥
महा० अनुशा० अ० १४३

" इस प्रकार के शुभकर्म तथा सदाचार से शूद्र ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सकता है तथा वैश्य क्षत्रियत्व प्राप्त कर सकता है । " यदि शूद्र सदा का बहिष्कृत होता तो यह कदापि हो नहीं सकता॥ अबतक उन लोगों के नाम दिए गए जो वर्तमान समय में अछूत मानी हुई जातियों से उच्च बने । भविष्य पुराण में कहा है कि ऐसे और कई हैं । इस प्रकार के कई उदाहरण रहना उस समय की प्रथा का निदर्शक है । जिस प्रकार शूद्र वा चांडाल जातिके लोग उच्चवर्ण के बने वैसे ही क्षत्रिय भी उच्च वर्ण के बने । देखिए—

वीतहव्यो महाराज ब्रह्मवादित्वमेव च ।
तस्य गृत्समदः पुत्रो रूपेणेन्द्र इवाऽपरः ॥ ५८ ॥
ऋग्वेदे वर्तते चाग्र्या श्रुतिर्यस्य महात्मनः ।
यद् गृत्समदो ब्रह्मन् ब्राह्मणैः स महीयते ॥ ५९ ॥
स ब्रह्मचारी विप्रर्षिः श्रीमान् गृत्समदोऽभवत् ।
—महाभारत अनु० अ ३० ॥

"वीतहव्य को गृत्समद नामक एक पुत्र हुआ जो रूपमें इंद्र के समान था । इस गृत्समद की श्रुति ऋग्वेद में है । इसे ब्राह्मणों ने भी मान दिया और यह ब्रह्मचारी रहकर विप्रर्षि गृत्समद हुआ । " इस वचन से ज्ञात होता है कि क्षत्रिय भी उच्चवर्ण में कैसे जाते थे । विश्वामित्र के ब्राह्मण बनने का हाल सब लोगों को

*

विदित ही है-

ब्राह्मण्यं तपसोग्रेण प्राप्तवानसि कौशिक ॥२०॥
ब्राह्मण्यं यदि मे प्राप्तं दीर्घमायुस्तथैव च ॥
क्षत्रवेदविदां श्रेष्ठो ब्रह्मवेदविदामपि।
ब्रह्मपुत्रो वसिष्ठो मां एवं वदतु देवताः ॥ २४ ॥
ततः प्रासादितो देवैः वसिष्ठो जयतां वरः।
सख्यं चकार ब्रह्मर्षिः एवमस्त्विति चाब्रवीत् ॥ २५ ॥
ब्रह्मर्षिस्त्वं न संदेहः सर्वं संपद्यते तव।
विश्वामित्रोऽपि धर्मात्मा लब्ध्वा ब्राह्मण्यमुत्तमम् ॥ २७ ॥
—वा० रामायण बा० अ० ६५

"विश्वामित्रने कठिन तपस्या करके ब्राह्मणत्वको प्राप्त किया। उसने कहा यदि मुझे ब्राह्मणत्व प्राप्त हुआ है तो क्षात्रविद्या तथा ब्रह्म विद्या में प्रवीण ब्रह्मपुत्र वसिष्ठ मुझे ब्राह्मण कहे; तब वसिष्ठने जिसकी देवों ने प्रार्थना की थी, कहा 'वैसा ही हो;' और उसने विश्वामित्रसे मित्रता की। उसने कहा 'तुम ब्रह्मर्षि हो इसमें कोई संदेह नहीं।' इस प्रकार क्षत्रिय विश्वामित्र ब्राह्मण हुआ।" यह कथा महाभारत में भी है-

ब्राह्मण्यं यदि दुष्प्राप्यं त्रिभिर्वर्णैर्नराधिप।
कथं प्राप्तं महाराज क्षत्रियेण महात्मना ॥१॥
विश्वामित्रेण धर्मात्मन् ब्राह्मणत्वं नरर्षभ।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन तन्मे ब्रूहि पितामह ॥ २ ॥

उसी प्रकार —

देहान्तरमनासाद्य कथं स ब्राह्मणोऽभवत्।
मतंगस्य यथा तत्त्वं तथैवैतद्वदस्व मे ॥ १८ ॥

स्थाने मतंगो ब्राह्मण्यमलभद् भरतर्षभ ।
चांडालयोनौ जातो हि कथं ब्राह्मण्यमाप्तवान् ॥ १९
महाभारत, अनु० अ० ३

" हे राजा ! यदि ब्राह्मण्य दुष्प्राप्य है तो वह क्षत्रिय विश्वामित्र को कैसे प्राप्त हुआ ? दूसरा देह धारण न करके ही वह ब्राह्मण कैसे हुआ ? चांडाल कुल में जन्म लेकर भी मतंग उसी देह में ब्राह्मण कैसे बन गया ? ' इसी प्रकारः-

वीतहव्यश्च नृपतिः श्रुतो मे विप्रतां गतः।
महाभारत अनु ३०

" मैंने सुना है कि वीतहव्य राजा को भी ब्राह्मणत्व मिल गया।" इत्यादि प्रमाणों से निश्चय होता है कि क्षत्रियों में से भी कई लोग ब्राह्मण हुए हैं । ऊपर के वचन में कहा है कि ब्राह्मणत्व दुष्प्राप्य है । पर उस से यह मतलब नहीं है कि द्विजत्व दुष्प्राप्य है। यदि शूद्र ब्राह्मण न भी हो सके तो द्विज अवश्य हो सकते हैं क्यों कि वह प्राप्त करना उतना कठिन नहीं है। यदि शूद्र क्षत्रिय तथा वैश्य बन जावेंगे, तो वे व्यवहार करने योग्य भी होंगे। वे सत्-शूद्र किस प्रकार बन सकते हैं तथा सत-शूद्र द्विज कैसे बनेंगे इस विषय में पहले ही कहा जा चुका है और यह भी पहले बता दिया है कि शूद्र आज जैसे बहिष्कृत हैं वैसे उन दिनों में नहीं थे। वाल्मीकि रामायण की श्रवण की कथा भी इसी बात को सिद्ध करती है:—

अज्ञानात्तु हतो यस्मात् क्षत्रियेण त्वया मुनिः।
तस्मात्वां नाविशत्याशु ब्रह्महत्या नराधिप ॥ ५५ ॥
न द्विजातिरहं राजन् मा भूत्ते मनसो व्यथा।
शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप ॥ ५० ॥
वा० रामा० अयो० ६३ । ६४

"हे दशरथ राजा? तूने अज्ञान से मुनि का वध किया है, इससे तुझे ब्रह्महत्या का दोष न लगेगा। तत्रभी मैं द्विजाति नहीं हूं। तू अपने मन को खिन्न न होने दे। मेरा जन्म शूद्री मा और वैश्य पितासे है।"

उपर्युक्त वचन में कहा है कि दशरथ राजाने मुनि का वध अ· ज्ञानसे किया इससे वह दोष का भागी नहीं है। शूद्र स्त्री में वैश्य से उत्पन्न हुए मुनि को मारने से ब्रह्म-हत्या (ब्राह्मणहत्या) का दोष लगने का डर है। इससे यह कह सकते हैं कि ऐसे लडके में भी ब्राह्मणत्व विद्यमान हो सकता है। अब देखें कि एक ही कुल में अनेक वर्ण होने के कौनसे उदाहरण हैं-

ममन्थुर्ब्राह्मणास्तस्य बलाद्देहमकल्मषाः ।
तत्कायात् मथ्यमानात्तु निपेतुर्म्लेच्छजातय ॥ ७ ॥
शरीरे मातुरंशेन कृष्णांजनसमप्रभाः ॥ ८ ॥ म· अ. १०

" उस वेन राजाके देहको निष्पाप ब्राह्मणों ने मथा और उससे माता के अंश के कारण कृष्णवर्ण म्लेच्छ जातियां उत्पन्न हुईं।" वेन राजा की कथा श्रीमद्भागवत (स्कंध ४।१३-१५) में आई है। उस स्थान में कहा है कि वेन राजा के बांए भाग से एक कृष्णवर्ण पुरुष उत्पन्न हुआ वह निषाद है, तथा दाहिने भाग से जो पुरुष उत्पन्न हुआ वह अच्छा क्षत्रिय पृथु राजा है। उसका वंशवृक्ष इस प्रकार है

अंगराजा
|
वेन राजा
| | |
पृथु राजा — निषाद, भील — म्लेच्छलोग

जिस समय एकही कुलमें क्षत्रिय, भील तथा म्लेच्छ उत्पन्न होना संभवनीय था, उस समय गुणकर्म के अनुसार ही वर्णव्यवस्था थी यह बात मानना ही होगी।

वासुदेवस्तु भगवान् असृजन्मुखतो द्विजान्।
राजन्यानसृजद् बाह्वोर्विट्शूद्रानूरुपादयोः ॥२८॥ मत्स्य० अ० ४

मनुजीके मरीची आदि पुत्र, सनत्कुमार तथा वामदेव पुत्र थे। उनमें से वामदेव से चार वर्ण उत्पन्न हुए। उनका वंशवृक्ष इस प्रकार है—

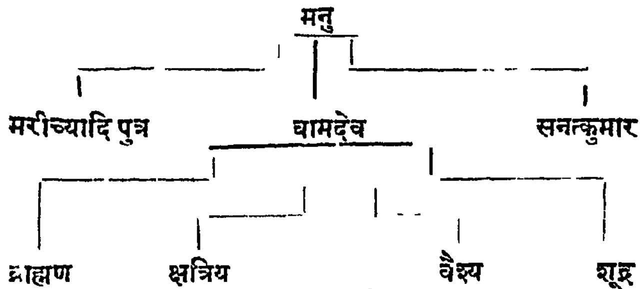

एक वामदेव से भिन्न भिन्न वर्ण के चार पुत्र हुए। उसी प्रकार :—

कश्यपः पुत्रकामस्तु चचार सुमहत्तपः।
तस्यैवं तपतोऽत्यर्थं प्रादुर्भूतौ सुताविमौ ॥ १ ॥
वत्सरश्चासितश्चैव तावुभौ ब्रह्मवादिनौ।
वत्सरान्नैध्रुवो जज्ञे रेभ्यश्च सुमहायशाः ॥ २ ॥
रेभ्यस्य जज्ञिरे शूद्राः पुत्राः श्रुतिमतां वराः।

कूर्मपुराण पू० अ० १९

'पुत्र होवे इसलिए कश्यप ने बड़ी तपस्या की इससे उसे वत्सर तथा असित दो पुत्र हुए। वत्सर को नैध्रुव तथा रैभ्य दो पुत्र हुए और रैभ्य को वेदपारंगतों में श्रेष्ठ शूद्र पुत्र हुए।" उनका वंशवृक्ष इस प्रकार है--

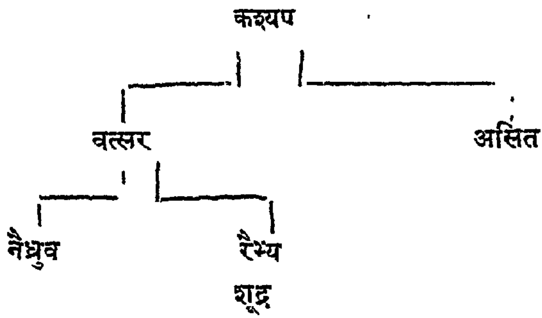

इस में देखने योग्य बात यह है कि ब्राह्मण कुलमें शूद्र उत्पन्न होते हैं और वे वेद जानने वालों में श्रेष्ठ होते हैं। इससे स्पष्ट है कि वर्ण कुल से निश्चित नहीं किया जाता था वरन् गुणों से । इसी प्रकार--

रन्तिर्नारः सरस्वत्यां पुत्रानजनयत् शुभान्
त्रसुं तथाऽप्रतिरथं ध्रुवं चैवातिधार्मिकम् ॥ १२९॥
गौरी कन्या च विख्याता मांधातुर्जननी शुभा।
धुर्योऽप्रतिरथस्याऽपि कंठस्तस्याभवत् सुतः ॥ १३० ॥
मेधातिथिसुतस्तस्य यस्मात् कांठायना द्विजाः ॥१३१॥
भरतस्तु भरद्वाजं पुत्रं प्राप्य तदाऽब्रवीत्॥१५३॥ वायुपु० अ० ९९

" नरका लडका रंति था। इसकी स्त्री सरस्वती को त्रसु, अप्रतिरथ, ध्रुव तीन उत्तम पुत्र तथा गौरी नामक एक कन्या हुई। उस विख्यात गौरी कन्या का पुत्र मांधाता नामका प्रसिद्ध राजा है। अप्रतिरथ के धुर्य नामक पुत्र हुआ और धुर्य का पत्र कंठ है। उस के लडके का नाम मेधातिथि और उसके लडकोंके नाम कांठायन द्विज थे।" इधर त्रसु के मलिन पुत्र हुआ और मलिन को दुष्यन्त पुत्र हुआ। इस दुष्यन्त को भरत नामका पुत्र हुआ और इस भरत

को भरद्वाज ऋषि नामका लडका हुआ ।' क्षत्रियों के कुल में उत्पन्न हुए ब्राह्मणों का हाल इस प्रकार है । उनका वंश वृक्ष इस प्रकार है-

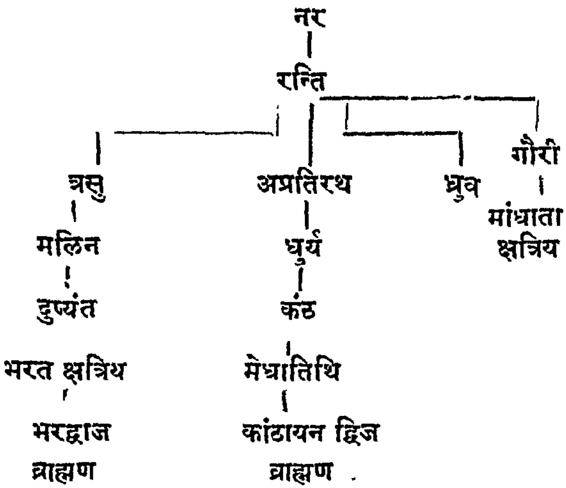

इस प्रकार मालूम होता है कि क्षत्रियों के कुल में ब्राह्मण होते थे । क्षत्रियों के कुल में ब्राह्मण होने का स्पष्ट भाव यह है कि उस समय गुणकर्म से ही वर्ण – व्यवस्था थी । अब देखिए भागवत के निम्न लिखित श्लोक में क्षत्रिय को म्लेच्छ लडका होने के विषय में लिखा है—

ये मधुच्छंदसो ज्येष्ठाः कुशलं मेनिरे न तत् ।
अशपत् तान् मुनिः क्रुद्धो म्लैंछा भवत दुर्जनाः ॥ ३३ ॥

श्रीमद् भागवत, स्कं. ९ । १६

" मधुच्छंद को छोडकर जिन बडे बालकों ने वह (विश्वामित्र का वचन) ठीक न माना उन्हे उस क्रोधित मुनिने शाप दिया, कि ऐ दुष्टो तुम म्लेंच्छ हो जाओ । "

इस बातको ध्यान में रखना चाहिए कि लडके परधर्म का

अंगीकार करने से म्लेच्छ नहीं हुए वरन विश्वामित्र जी का कहना न मानने से हुए। उच्च कुल में उत्पन्न होकर हीन हुए लोगों के भी कई उदाहरण हैं। सगर राजा के लडके को देश से निकाल दिया था, उसीके वंश के लोग भील आदि हैं। उस समय के क्षत्रियों ने उसे अपने समाज में वापिस नहीं लिया इससे वह सदा के लिए हीन रहा। उसी रीतिसेः—

नाभागो दिष्टिपुत्रोऽन्यः कर्मणा वैश्यतां गतः ॥ २३ ॥

श्रीमद्भागवत स्कं० ९। २

"दिष्ट " ाभाग अपने कर्म से वैश्य हुआ।" इससे स्पष्ट है कि उस समय गुणकर्म के अनुसार ही वर्ण- व्यवस्था थी।

वेणुहोत्रसुतश्चाऽपि भर्गो नाम प्रजेश्वरः।
वत्सस्य वत्सभूमिस्तु भृगभूमिस्तु भार्गवात् ॥
एते ह्यांगिरसः पुत्रा जाता वंशेऽथ भार्गवे।
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्च भरतर्षभ ॥ हरिवंश ३२

इस में लिखा है कि भार्गव वंश में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र लडके हुए।

काशकश्च महासत्वः तथा गृत्समतिर्नृपः।
तथा गृत्समतेः पुत्रा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ॥

हरिवंश पुराण, अ० ३२

"गृत्समती राजाके ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य पुत्र हुए।" इस से क्षत्रिय कुलमें ब्राह्मण तथा शूद्र होने का उदाहरण पाया जाता है।

पुत्रो गृत्समदस्याऽपि शुनको यस्य शौनकः।
ब्राह्मणाः क्षत्रियाश्चैव वैश्याः शूद्रास्तथैव च ॥ हरिवंश अ० २९

" गृत्समद का पुत्र शुनक, शुनकसे शौनक, इस शौनक के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इस प्रकार चार लडके हुए। इस कुल के संबंधमें वायुपुराणमें लिखा है, " एतस्य वंशे संभूता विचित्राः कर्मभिर्द्विज ॥ " अर्थात इस वंश में विचित्र काम करने वाले लडके हुए और भी देखिए-

पृषध्रस्तु गुरुगोवधात् शूद्रत्वमगमत् ।

विष्णु पुराण ४ । १ । १४

पृषध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गां जनमेजय ।

शापाच्छूद्रत्वमापन्नः................... ॥ —हरिवंश

' पृषध्र द्विज था, परन्तु गुरुदेव की गौं को मार डालने से वह शूद्र हो गया। ' इस प्रकार कई आधार हैं जिनसे यह सिद्ध होता है कि प्राचीनकाल में वर्ण का निश्चय गुण तथा कर्मों से ही किया जाता था। गो-वध के कारण पृषध्र शूद्र बन गया। इस से सिद्ध होता है कि शूद्रों का प्रधान लक्षण गोवध या गो-हत्या था। पिछले पृष्ठों में बताया ही गया है कि शूद्रवाचक ' वृषल ' शब्द में यह अर्थ अभिप्रेत है। यदि गुणकर्मों से वर्ण निश्चय न होता तो आगे दिया हुआ हाल न होता--

रंभस्य रभसः पुत्रो गंभीरश्चाक्रियस्तथा ।

तस्य क्षेत्रे ब्रह्म जज्ञे शृणु वंशमनेहसः ॥ १० ॥

श्रीमद् भागवत

' रंभ के पुत्र रभस, गंभीर तथा अक्रिय थे उनके क्षेत्र में ब्राह्मण उत्पन्न हुए। ' इसी प्रकार--

पूरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि भारत ।

यत्र राजर्षयो वंश्या ब्रह्मवंश्याश्च जज्ञिरे ॥ १ ॥

श्रीमद् भागवत् ५ । २०

' हे भारत! जिसके वंश में तुम उत्पन्न हुए हो उस पुरु का वंश मैं बताता हूं। तेरा वंश ऐसा है जिस में राजर्षि और ब्राह्मण के वंश उत्पन्न हुए।"

गर्गात् शनिस्ततो गार्ग्यः क्षत्रात ब्रह्म ह्यवर्तत ॥
दुरितक्षयो महावीर्यात् तस्य त्र्य्यारुणिः कविः।
पुष्करारुणिरित्यत्र ये ब्राह्मणगतिं गताः ॥ २० ॥

श्रीमद् भागवत ९ । २१

' गर्ग से शनि हुए उनसे गार्ग्य हुए। क्षत्रिय से ब्राह्मण बने। महावीर्य से दुरितक्षय, उससे त्र्य्यारुणि तथा पुष्करारुणि हुए। इन्होंने ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लिया।' इसी प्रकार के वर्णन कई पुराण में हैं। बिलकुल ही नीच कुल में उत्पन्न होकर जिन्होंने उच्च वर्ण प्राप्त कर लिया तथा अति उच्च कुल में जन्म लेकर जो हीन हो गए हैं ऐसे ही लोगों के उदाहरण ऊपर दिए गए हैं। इन उदाहरणों से अच्छी तरह ज्ञात होता है कि उस समय वर्ण-व्यवस्था गुण-कर्म के अनुसार किस प्रकार थी। अब प्रश्न यही है जिस समय वर्णव्यवस्था इस प्रकार गुण-कर्मों पर निर्भर थी, उस समय एक खास जाति आज जैसी कैसे बहिष्कृत हो सकती है? जिस समय चांडाल सत-शूद्र बनकर फिर द्विज बन जाते थे, उस समय चांडाल व्यवहार के लिए पूर्ण तया अयोग्य थे' यह बात किस बुनयाद पर कही जा सकती है? इसी लिए स्पष्ट है कि उस समय छूत अछूत का दोष नहीं माना जाता था।

(६) अब देखें कि नीच जाति के लोग किन कर्मों से उच्च बन जाते थे। धर्म शास्त्रों से विदित होता है कि नीच जाति के लोग दो प्रकार से उन्नति कर सकते थे। एक स्त्रियों

से और दूसरा पुरुषों से। स्त्रियोंसे होने वाली उन्नति जन्म के कारण होती थी और पुरुषों से होने वाला उद्धार कर्मों से होता था। प्रथम पहले प्रकार का विचार करें—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैव शूद्रताम्॥
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात् तथैव च॥
शूद्रायां ब्राह्मणाज्जातः श्रेयसा चेत् प्रपद्यते।
अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं गच्छत्यासप्तमाद् युगात्॥

—मनुस्मृति।

'शूद्र ब्राह्मणत्व प्राप्त करता है और ब्राह्मण शूद्रत्व को पहुंचता है। इसी प्रकार क्षत्रिय तथा शूद्र उच्च और नीच होता है। ब्राह्मणसे शूद्र स्त्री को जो पुत्र होगा वह सात युगों (जोडियों) के बाद ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सकेगा।' जन्मसे ब्राह्मणत्व प्राप्त करने की यह रीति है।

'स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।' मनु० अ० २।२३८ में कहा है, कि-दुष्ट कुल, नीचकुलसेभी स्त्री का स्वीकार करना चाहिए। इसी प्रकारः—

स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या शौचमन्नं सुभाषितम्
विविधानि च शिल्पानि समादेयानि सर्वतः॥

—मनुस्मृति

"स्त्रियां, रत्न, विद्या, शुद्ध आचार, अन्न, सुभाषित तथा विविध शिल्पशास्त्रों को सबसे लेना चाहिए।"

इस वचन के अनुसार उच्च वर्ण के लोग नीच वर्ण की स्त्री से विवाह कर सकते हैं। इसमें संदेह नहीं कि स-वर्णकी स्त्री उत्तम है, परन्तु हीन वर्ण की स्त्री से विवाह करने में प्रतिबंध नहीं था। इस प्रकार शूद्र स्त्री तथा ब्राह्मण पुरुष के विवाह

से जो संतान होगी उसमें से लडकी का विवाह ब्राह्मण ही से करना, इनकी लडकी का भी विवाह ब्राह्मण से करना इस प्रकार सातवें विवाह से जो संतान होगी वह उत्तम ब्राह्मण होगी। ऊपर दी हुई स्मृति का भावार्थ इस प्रकार है। इस रीतिसे शूद्रसे ब्राह्मण वनने के लिए सात विवाह, वैश्य से ब्राह्मण वनने के लिए पांच विवाह, और क्षत्रियसे ब्राह्मण वनने के लिए तीन विवाह आवश्यक हैं। पहले वताया गया कि अ-सत्-शूद्र या चांडाल से सत्-शूद्र किस प्रकार वनते हैं। इसी प्रकार अंत्यजों को चाहिए कि वे मद्य तथा मांस छोडकर सदाचार से रहें जिससे वे सत-शूद्र वन जावें, और उनकी उच्च जाति वन जावे, जैसे कि अभी वताया गया।

परन्तु इस रीति में एक कठिनाई है। वह कठिनाई यह कि उपर्युक्त विवाहों से कन्याही होनी चाहिए। मान लीजिए कि छटवें विवाह के वाद कन्या हुई ही नहीं तो अव तक का परिश्रम व्यर्थ हुआ और दूसरी वात यह कि पुरुष संतान को उन्नति के लिए रास्ता ही नहीं है। इस प्रकार से हुए अनुलोम विवाह से जो मिश्र संतान होगी उस में से कन्याओं का विवाह ब्राह्मणों से हुआ तो भी पुरुष संतान कोरी ही रही। नेपालके लोग महाराष्ट्रीय ब्राह्मण को उच्च ब्राह्मण तथा उससे नेपाली स्त्री में जो संतान होती है उसे अच्छा क्षत्रिय मानते हैं। बंगाल में कुलीन ब्राह्मण एक ब्राह्मणों का उप-भेद है। लोगों की समझ है कि उन लोगों में भी तेज है। परन्तु वहां भी अनुलोम विवाह की प्रथा लुप्त हो गई है। अस्तु। इस प्रकार से उच्च वर्ण वनाने का प्रयत्न किया जावे तो वह असफल होने की संभावना अधिक है। इस लिए यह पद्धति गौण समझी जाति है।

पहले जिसका कथन हो चुका है, वह गुणकर्म से वर्ण निश्चित करने की पद्धति ही सबसे अच्छी और श्रेष्ठ है। इस पद्धति के अनुसार हर व्यक्ति को अपने ही कर्मों से अपनी उन्नति कर लेने की गुंजायश है। पुरुष हो, वा स्त्री, सदाचार से उसकी उन्नति हो कर उसका वर्ण उच्च होगा। यदि शूद्रों में द्विजों के लक्षण नजर आवे तो उन्हें द्विज कहना चाहिए, और यदि शूद्रों के लक्षण ब्राह्मणों में दिखें तो उन्हें शूद्र कहना चाहिए। इस अर्थ का महाभारत का जो वचन पहले बताया है वही उन्नति का राजमार्ग है। इस राजमार्ग से उन्नति प्राप्त कर लेनेवालों के उदाहरण कई हैं, उनमें से कुछ उदाहरणों का निर्देश पिछले पृष्ठों में हो चुका है। उन से विदित होगा कि एक ही जन्म में नीच लोग उच्च होते थे तथा उनमें छूत अछूत नहीं थी।

उच्च वर्ण की व्यक्ति से विवाह करने से उसकी खुद की जाति तो बदलती ही नही। मनुजी के उपरोक्त श्लोक में कहा है: —

'अश्रेयान् श्रेयसीं जातिं गच्छति।' अर्थात् 'नीच मनुष्य उच्च जातिका बन जाता है।' यह बात सातवी पीढी में सिद्ध होगी। इस लिए वह एक व्यक्ति के लिए उपयोगी नहीं। क्यों कि एक मनुष्य यदि उच्च होना चाहे भी तो वह उसके लिए असंभव है। वह तो स्त्रियों की सातवीं पीढी में सिद्ध होगी। तब तक कितनी ही जीवात्माएं उत्पन्न हो जातीं हैं। यदि किसी एक जीवात्माको उच्च होने की इच्छा हुई तो वह उसे सिद्ध करते बनना चाहिए एवं धर्म के मार्ग ऐसे ही होने चाहिए। इस दृष्टि से भी यही कहना आवश्यक होता है कि पहला अर्थात् गुणकर्म - स्वभाव से उन्नति प्राप्त करने का मार्ग ही राजमार्ग है और वह सब लोगों के लिए खुला है।

शूद्रोंकी अछूत।

भाग ८ वां।

(१) ब्राम्हण, क्षत्रिय, तथा वैश्य त्रिवर्ण आर्य हैं तथा शूद्र वर्ण अनार्य है। इस वर्ण को एकजाति वर्ण भी कहते हैं। इस एकजाति अनार्यों में वढाई, कुम्हा, नाऊ, धोबी, चमार आदि कारीगर लोग शामिल हैं। इन में से वढई, कुम्हा, नाऊ; तथा धोवी आदि आध छूत माने जाते हैं, तथा धेड, चमार, डोम आदि पूरे अछूत। अर्थात् इस एकजाति अनार्यों में कुछ उपजातियां छूत और कुछ उपजातियां अछूत मानी गई हैं।

ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में जहां चार वर्णों का विचार पहले प्रगट किया गया है वहां शूद्र को परमपुरुष का एक अंग वतलाया है। ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र उस परम पुरुष के क्रमसे मुख, वाहु, ऊरु तथा पैर माने गये हैं। इस कल्पना के अनुसार शूद्रों के विषय में वह अछूत नहीं है जो कि आजकल सोची जाती है। शरीर के एक अंग का दूसरे अंग से स्पर्श हुआ ही है। वह अंग जव तक काट कर अलग नहीं किया जाता तब तक अछूत एवं छूने के लिए अयोग्य नहीं हो सकता और उसे दूर भी नहीं रख सकते। यदि उसे काटकर अलग कर दें तो शरीर में व्यंग हो जावेगा तथा वह कमजोर होगा। इसी प्रकार यदि चातुर्वर्ण्य स्वरूप शरीर का एक वर्ण अछूत मानकर उसको दूर कर दें तो उस चातुर्वर्ण्य शरीर की शक्ति कम होगी। यही विचार तथा उपदेश उपर्युक्त सूक्त में अभिप्रेत है। इस चातुर्ण्य स्वरूप देह धारण करने वाले पुरुष की कल्पना

चारों वेदों में आई है; केवल इतना ही नहीं वह चारों वेदों में एकसी ही है। तब चारों वेदों का सार यही स्पष्ट है कि चारों वर्णों को एकता से, मेल से रहना चाहिए। वेदों में कहा है कि कुछ लोगों को दूर रखना चाहिए। परन्तु यह बात दुष्ट आचार के तथा उपद्रवी लोगों के संबंध में कही गई है। दस्यू चोर डाकू आदि कों को दूर रखने के विषय में जो वचन हैं वे पहले दिए गए हैं। इस स्थान में एक दो वचनों का विचार और करना है। —

आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नम् ०॥ ऋग्वेद०

"गाय तथा पुरुष की हत्या करनेवाले को दूर करो।" यह उपदेश ऋग्वेद का है। जब हम समाज स्वास्थ्य का विचार करते हैं तब हमें कहना ही होगा कि यह उपदेश उचित ही है। हत्यारे तथा रुधिरप्रिय लोग समाज को उपद्रव पहुंचाते हैं ऐसे लोगों को दूर रखना वा देशसे निकाल देना अयोग्य नहीं है इसी प्रकारः—

य आमं मांसमदन्ति पौरुषेयं च ये क्रविः।
गर्भान् खादन्ति केशवाः तान् इतो नाशयामसि॥
अथर्व-वेद ८। ३। २३

"जो कच्चा मांस खाते हैं, जो नरमांस खाते हैं, तथा जो गर्भ को भी खा जाते हैं, उन लम्बे बालवाले लोगों को इस स्थान से (इस समाज से) नष्ट कर डालता हूं।"

इस प्रकार के नर मांस भक्षकों को समाज कदापि पसंद न करेगा। ऐसे लोगों से समाज की रक्षा करने के लिए उन्हे समाज से बाहर निकाल देना ही लाभकारी होगा। इसी प्रकारः—

मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः।

ऋ० ७।२१।५

"शिश्न को देवता समझने वाले लोग (अर्थात् व्यभिचारी) हमारे यज्ञ में न आवें।" माता, पिता तथा गुरु को देवता समझकर उनका सन्मान करने वाले लोग समाज का हित करते हैं। परन्तु 'शिश्न को देव' मानने वाले लोग समाज में अनीति फैलाते हैं इससे वे समाज से बाहर निकालने के योग्य ही हैं। इस नियम से ही समाज की नीति अच्छी रह सकती है। इसी लिए वह नियम योग्य है।

सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुः तासामेकामिदभ्यंहुरोऽगात्।

ऋ० १०।५।६

निरुक्तम्- सप्तैव मर्यादाः कवयस्ततक्षुः।
तासामेकामपि अभि गच्छन्नंहस्वान् भवति॥
स्तेयमतल्पारोहणं ब्रह्महत्यां भ्रूणहत्यां सुरापानं
दुष्कृतस्य कर्मणः पुनः पुनः सेवां पातकेऽनृतोद्यम्॥

"चोरी, व्यभिचार, ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, मद्यपान आदि दुष्ट काम बार बार करना तथा पापकर्म करने पर झूट बोलना इसकी सात मर्यादा की बातें बताई गई हैं। इनमें से एक बात को भी किया तो वह पतित हो जाता है।" शूद्र लोग पतित हैं। पतित होने का कारण इस मन्त्र में दिया गया है। उपर्युक्त मर्यादा का उल्लंघन करने से मनुष्य पतित होता है। इन पतित लोगों के साथ रहने वाले भी पतित ही समझे जाते हैं। देखिए—

स्तेनो हिरण्यस्य सुरां पिबंश्च गुरोस्तल्पमावसन्।
ब्रह्महा चैते पतन्ति चत्वारः पंचमश्चाचरंस्तैः॥

छांदोग्य उपनिषद् ५।१०।९

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह॥
मनु० ११। ५४

"नीचे लिखे पांच कारणों से मनुष्य पतित होता है। चोरी, मद्यपान, व्यभिचार, ब्रह्महत्या तथा पापकर्मी लोगों के साथ संबंध आना।" लोग बहिष्कृत, पंगत में बैठने के लिए अयोग्य, व्यवहार करने के लिए अयोग्य, तथा अछूत, जिन कारणों से होते हैं वे कारण इस प्रकार हैं। (१) चोरी करना, (२) मद्यपीना, (३) विद्वान लोगों की हत्या करना, (४) गर्भपात, बालहत्या आदि कराना, (५) परस्त्री गमन, व्यभिचार (६) दुष्ट कृत्य बार बार करना, (७) पापकर्म करके झूट बोलना (८) गौहत्या करना, (९) नरमांस भक्षण करना (१०) गर्भ-भक्षण करना, और (११) इस प्रकार दुष्ट काम करने वालों से संबंध रखना, आदि कारणों से मनुष्य पतित एवं बहिष्कृत होता है। जिन लोगों में उपर्युक्त दुर्गुण नहीं वे व्यवहार योग्य हैं। यह प्राचीनकालका नियम वर्तमान समय में बिलकुल नहीं माना जाता। पहले बताए हुए पापकर्म करने वाले लोग सिर ऊंचा लिए हुए समाज में रहते हैं, वे पंगत में बैठने योग्य समझे जाते हैं। परतु बेचारे अंत्यज किसी प्राचीन समय के पातक के कारण अछूत बने सो अब तक वैसे ही हैं॥ यदि वे अंत्यज उपर्युक्त पापकर्मों में से एक भी अब नहीं करते तो उनसे व्यवहार करने में, उनको स्पर्श करने में हानि ही क्या है? धर्म में जाति के अनुसार पक्षपात करो इस प्रकार का वाक्य वेदों में नहीं है। चारों वेदों में किसी भी स्थान में यह नहीं बताया गया कि अमुक मनुष्य को अछूत समझो। वेदों में किसी भी स्थान में ऐसा मंत्र नहीं है जिससे यह प्रगट हो कि अमुक

को अछूत समझो। जो वृषल गोवध आदि पाप कर्मों के कारण दंडनीय हुआ, उस वृपल की भी स्थिति वह नहीं थी जो वर्तमान समय के वहिष्कृत अंत्यज की है। यह बात नीचे लिखे मंत्र से स्पष्ट होगी।—

> स्त्रियं दृष्ट्वाय कितवं तताप अन्येषां जायां सुकृतं
> च योनिम्॥ पूर्वाह्न अश्वान् युयुजे हि बभ्रून्त्सो
> अग्नेरन्ते वृषलः पपाद ॥११॥
>
> ऋग्वेद मं०१०।३४॥

(२) 'दुष्ट और जुआडी मनुष्य दूसरों की सुंदर स्त्रियां तथा सुंदर सुंदर युवतियां देखकर तथा दूसरों की उन्नति देखकर जलते हैं। (इस प्रकारके दुष्कृत्य करने वाले जुआंडी) शूद्रने सवेरे लाल घोडे जोते थे। परन्तु वह अव सायंकाल के समय, उसके पास कपडे न होने के कारण ठंड से पीडित होकर, आग के पास पडा है।"

इस से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में वृषलों-शूद्रों-की सामाजिक तथा आर्थिक दशा किस प्रकार की थी। सवेरे के समय गाडीमें घोडे जोतकर घूमनेवाले वृपल उस समय थे, वे अग्नि की पूजा करते थेः परन्तु उनका नैतिक आचरण संतोषदायक न था। इस मंत्रसे ज्ञात होता है कि उनकी आर्थिक दशा अच्छी तरह संतोषदायक थी। आगे दिए हुए मंत्र से निश्चित होता है कि शूद्र लोग नमस्कार करने के योग्य थे। देखिएः—

> नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो
> नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्च वो नमो
> नमो निषादेभ्यः पुंजिष्टेभ्यश्च वो नमो
> नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमो
>
> यजुर्वेद अ० १६।२७

महीधरभाष्यम्- तक्षाणः शिल्पजातयस्तेभ्यो नमः रथं कुर्वन्ति रथकाराः सूत्रधारविशेषास्तेभ्यो नमः। कुलालाः कुंभकाराः तेभ्यो नमः । कर्मारा लोहकारास्तेभ्योनमः। निषादा गिरिचरा मांसाशना भिल्लास्तेभ्यो वो नमः। शुनो नयंति ते श्वन्यः० तेभ्यो वो नमः। मृगान् मारयन्ते ते मृगयवः........ तेभ्यो वो नमः।

'बढई, रथकार, लुहार, कुम्हार, निषाद, भील, पौल्कस आदि (शूद्रों को) प्रणाम।' वेदोंमें कहा है कि इसी प्रकार सब कारीगर शूद्रों को तथा निषादों को भी नमन करना चाहिए। इससे स्पष्ट होता है कि वर्तमान समय में जिन जातियों को नीच मानते हैं वे शूद्र जातियां भी प्रणाम के योग्य थीं। यदि कहा जाय कि चमार, बढई, लुहार, कुम्हार, आदि कारीगर नमस्कार करने के योग्य थे तो इस देशके लोग आश्चर्य करेंगे। परन्तु यदि देखना हो कि इन कारीगरों की योग्यता कितनी है तो यूरप और अमेरिका की ओर दृष्टि-क्षेप कीजिए। वहां लुहार, चमार तथा सुतार करोडपति मिलेंगे। अपने देश में दूसरी दूसरी बातों की अवनति के साथ बढई, लुहार तथा चमार आदिके व्यवसाय अवनत हुए। परन्तु समाज के हित की दृष्टि से तथा आवश्यकता की दृष्टि से देखें तो विदित होगा कि उपर्युक्त व्यवसाय किसी भी प्रकार से कम योग्यता के नहीं हैं। देश की बढती हुई दशा में इन्हीं लोगों द्वारा देश के धन की वृद्धि होती है। हर एक मनुष्य की आवश्यक चीजें बनाने वाले लोग ये ही हैं इसी लिए वे द्विजों से भी नमस्कार के योग्य माने जाते थे। उपर्युक्त वचन यजुर्वेद का है वेदका पाठ द्विज ही करते हैं। अर्थात् उपर्युक्त वचन द्विजों का कहा है। इसी दृष्टि से उसका महत्त्व अधिक है। इस प्रकार नमस्कार करने योग्य जातियां भी हीन होकर वा हीन समझी जाकर सदा के लिए बहिष्कृत हुईं।

काल के प्रवाह में विचारों को उत्तेजना न मिलने से विषमता बढ़ती है। यह विषमता अंत में कहां तक पहुंचती है, वह बढने पर समाज की प्रगति में किस प्रकार बाधा डालती है, इतनाही नहीं वरन् समाज में किस प्रकार शिथिलता उत्पन्न करती है देखना हो तो इस छूत अछूत की ओर देखिए, जो आज हिन्दु समाज में प्रचलित है।

(३) स्मृति ग्रंथों के आधार से पहले ही कहा गया है कि शूद्र यदि किसी को नौकरी करना पसंद न करते हों और स्वतंत्र रीतिसे रहना चाहते हों तो उनको चाहिए कि वे बढई कुम्हार, लुहार, धोबी, कुष्टा, नाऊ या चमार का रुजगार कर अपना निर्वाह करें। जिन शूद्रों को स्वतंत्रता से रहना संभव नहीं वे त्रैवर्णिकों की सेवा करें। कई स्थानों में कहा गया है कि शूद्रोंका काम परिचर्या करने का है, उसका भी भाव यही है। घर के कष्ट के सब काम परिचर्या में आ जाते हैं। वर्तन मलना, लीपना, धोती धोना, भोजन पकाना, पानी भरना आदि काम परिचर्या में शामिल हैं। इसी प्रकार के और भी काम जो अनुचर को करना पडते हैं परिचर्या में शामिल हैं। किसी खास जातिका शूद्र ही वे काम करे, यह नहीं। शूद्र तो 'एकजाति' कहा गया है। वह भले ही उपर्युक्त भिन्न भिन्न व्यवसाय करे, पर उस की एकजात मिटती नहीं। सब शूद्र मिलकर भी 'एकजाति' ही है। उनमें से जो सत् शूद्र बनेंगे और आगे चलकर वे द्विज बनेंगे उनकी बात भिन्न है। परन्तु जबतक वे द्विज नहीं बने तब तक द्विजेतर जितने शूद्र हैं, उन सब की जात एक ही माननी चाहिए। इन सब शूद्रों को पूर्ण अधिकार है कि वे द्विजों की परिचर्या करें। पहले ही बताया गया है कि वृषल शब्द का अर्थ है 'गोवृष हिंसक'। इसी शब्द का अर्थ आगे चलकर धर्महीन हुआ। परन्तु बढई, लुहार, कुष्टा धोबी, नाऊ,

कुम्हार तथा चमार आदि लोगों में बहुतेरे लोगोंने गौ-हत्या करना छोड दिया है। धेड और उसीके समान कुछ जातियों ने वह काम अब भी जारी रखा है; तब वृपल शब्द के सच्चे मूलार्थ के अनुसार वह शब्द धेड के लिए ही कहा जा सकता है। अर्थात् वृपलत्व, वा शूद्रत्व यदि मूल स्थिति में कहीं नजर आता है तो वह इसी जाति में। बाकी शूद्र शुद्ध हैं इससे वे सत्-शूद्र हैं और उनका अधिकार द्विज बनने के लिए काफी ऊंचा है। असली शूद्र जो गोमांस आदि खानपान में लाते हैं, तथा जिन्हें अंत्यज कहते हैं वे ही हैं। त्रैवर्णिकों की और द्विजों की योग्यता रखने वाले सत्-शूद्र गांवों में रहते थे, जंगलों में नहीं। यही प्राचीन प्रथा अधिकांश में अब भी प्रचलित है। मराठी में एक कहावत प्रसिद्ध है, ' गांव होगा वहां म्हारवाडा होगा ही' अर्थात् गांव के साथ धेड मुहल्ला होना ही चाहिए। इस कहावत से स्पष्ट होता है कि गांव तथा धेड मुहल्ला अलग अलग थे। इसी प्रकार की शब्द रचना है ' उत शूद्रे उत आर्ये '। आर्य शब्द से ग्रामवासी त्रैवर्णिक आर्यों का बोध होता है तथा शूद्र शब्द से गांव के पास ही रहने वाले अंत्यजों का बोध होता है। ' बहिष्कृत ' शब्द का भी अर्थ है ' कुछ कारण वश गांव के बाहर रहने वाले'। 'पतित' शब्द का अर्थ है ' पूर्वोक्त सात मर्यादा का उल्लंघन करने वाले '। ' वृपल ' शब्द का अर्थ है ' गौहत्या करने वाले'। इस प्रकार के शूद्र गांव के पास रहने वाले लोग हैं। मनुष्यों के तीन भेद किये जा सकते हैं ग्रामनिवासी, ग्रामबहिर्निवासी और वनवासी। यदि आर्ष काल की दृष्टिसे इनको नाम देना हो तो इन्हें आर्य, शूद्र, तथा निषाद कह सकते हैं। आर्यों में ग्रामनिवासी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा द्विज होनेका अधिकार रखने वाले सत् शूद्र शामिल हैं।

शूद्रोंमें मूल अनार्य तथा पंचमहापातकों के कारण बहिष्कृत लोग शामिल हैं और शेष जंगली जातियाँ निषाद में शामिल हैं। इससे स्पष्ट होगा कि मूल शूद्रत्व आज कल के धेडों में ही है। अब कुण्बी, कुह्मार, बढई आदि जो चार पांच प्रकार के शूद्र बचे वे सतशूद्र हो कर ब्राह्मणत्व की ओर झुके, इस लिए वे उन्नति कर गए। जो इस प्रकार उन्नति न कर सके वे पहले के सदृश ही ग्राम बहिष्कृत रहे और अब भी हैं। इसी लिए निरा शूद्र यदि कोई हो तो वह आज कल का धेड है। इनके लिए पतित, वृषल, बहिष्कृत, अनार्य तथा शूद्र इन सब शब्दों का प्रयोग कर सकते हैं। पहले जो गुण, शूद्रों के लक्षण, बताए गए हैं, वे लक्षण यद्यपि सब नहीं तब भी कुछ - अवश्य ही इन शूद्रों में हैं। प्राचीन समय में इन शूद्रों में सदाचारी लोग रहते थे। वे गांव के भीतर ले लिए जाते थे। तथा जो गांव के लोग दुराचारी बनते उन्हें बाहर निकाल दिया जाता था। परन्तु आगे चलकर यह प्रथा बंद हो गई। इससे गांव में पतित लोगों की संख्या बढ गई और गांव के बाहर रहनेसे सदा के लिए बहिष्कृत हो गए। इस से उनकी उन्नति को रास्ता बंद हो गयी। अस्तु, इस प्रकार सोच ने से विदित होगा कि यदि सच्चे शूद्र आज कल हैं तो वे धेड और उन्हींकी निकट संबंधी अन्य जातियां। इन शूद्रों का काम है परिचर्या करना। उन्हें द्विजों के पास रह कर उनके आचरण से अपना सुधार कर लेने के लिए परिचर्या एक साधन है। जिस समय शूद्रों के द्विज बनते थे, उस समय शूद्रों को उपर्युक्त रीति से अपनाना यह आर्य जातिका उनपर उपकारहो था। जित लोगोंको जेते यदि इस प्रकार अपनावें तो संसार बहुत ही जल्द सुधरेगा। परन्तु आगे चल कर एक समय ऐसा आया जब राजमद के कारण यह उदारता नष्ट हुई और

अनार्य सदा के लिए बहिष्कृत हो गए। इस प्रकार बिलकुल हीन और दीन हुए लोग जो धेड वेही सच्चे और असली शूद्र हैं। अब इन शूद्रों के कर्तव्य के विषयमें विचार करें।

परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्याऽपि स्वभावजम्।

गीता, अ. १८।४४

अर्थात् " शूद्रों का स्वाभाविक कर्तव्य है त्रैवर्णिकों की सेवा करना। " जो सदा के लिए बहिष्कृत है, उसके लिए क्या परिचर्या करना कभी संभव है? और कुछ नहीं, तो एक परिणाम अवश्य होगा कि यदि इन का बहिष्कार निकाल दिया जाय तो, ये लोग ग्राम निवासियों की परिचर्या करने लगेंगे। हिन्दू लोगों ने इन लोगों को अतिशूद्र मान लिया और उच्च वर्ण के लोगों को शूद्र समझ लिया। इससे इन बेचारे सच्चे शूद्रों की खबर ही लोग भूल गए। ईसाईयोंने उन्हें अपनाया और साहब लोगोंने उन्हे बबर्ची बनाया। इस प्रकार उन शूद्रों का परिचर्या का काम तब से उनसे कराया जाने लगा, जब से यूरोपीयन लोग हिंदुस्थान में आए। यदि यही काम हिन्दूओंकी उच्च जातियां उनसे करातीं तो उन्हें विधर्मियों के पास आश्रय लेने की आवश्यकता न होती। ऊंचे हिन्दुओं को उनका स्पर्श भी नहीं चलता; इसी प्रकार सत् शूद्रोंका भोज्यान्न स्पर्श भी पसंद नहीं है। मनुस्मृति में तो कहा है कुछ शूद्रों से अन्न लेना चाहिए। परन्तु रूढि के विरुद्ध चलने को हिम्मत किसमें ? लोग तो उनके हाथ से पानी भी लेनेको तैयार नहीं हैं। और और बातों में छूत समझे गए सत् शूद्रों का यह हाल है तब दूसरे नीच जातियों के विषय में कहना ही क्या?. मनुस्मृति में कहा है कि—

अर्धिकः कुलमित्रं च गोपालो दासनापितौ
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानम् निवेदयेत् ॥
मनु० अ० ४।२५३

कुल्लूक भट्टटीका-अर्धिकः कार्षिकः। यो यस्य कृषिं करोति स तस्य भोज्यान्नः। एवं कुलस्य मित्रम्। यो यस्य गोपालः। यस्य नापितः। कर्म करोति। यो यस्मिन्नात्मानं निवेदयति दुर्गतिरहं त्वदीयसेवां कुर्वन् इति च त्वत्समिपे वसामीति यः शूद्रः स तस्य भोज्यान्नः।

(३) "शूद्रों में किसान, ग्वाल, नाऊ तथा नौकर लोगों का अन्न खाने योग्य है। इसी प्रकार जो कुल का मित्र है तथा जो खुद कहता है कि मैं तुम्हारी सेवा करके रहूंगा वह भी भोज्यान्न जानो।"

'भोज्यं अन्नं यस्य स भोज्यान्नः।' जिसका अन्न भोजन करने योग्य समझा जाता है वह भोज्यान्न है। उपर्युक्त श्लोक में बताया है कि किसका भोजन खाना चाहिए और किसका नहीं। ऊपर बताया है कि किसान, ग्वाल और नाऊ भोज्यान्न हैं। इससे मालूम होता है कि उनका पकाया हुआ भोजन खाने योग्य है। ऊपर के श्लोक में इनके सिवा कुलमित्र, दास तथा आत्मनिवेदक भी भोज्यान्न बताए हैं। ये लोग पहले की तीन जातियों से नीची जाति के होने चाहिएं। क्यों कि यदि ये उन्हीं जाति के होते तो इनके विषय में अलग निर्देश करने की आवश्यकता नहीं थी। जब नाऊ आदि लोगों का भोजन खाने योग्य था, तब क्षत्रिय, वैश्य तथा सत् शूद्रों का भोजन भी खाने योग्य अवश्य होगा। जो लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा भोज्यान्न शूद्रों में शामिल नहीं हैं वे कुल मित्र, दास तथा आत्मनिवेदक शब्दों से बताए

गए हैं ! पहले बताया गया है कि अनार्यों के तीन भेद हैं दस्यु, दास और शूद्र। उन में से ऊपर बतलाए हुए लोग दास हैं। चोरी तथा लूट-मार करनेवाले दस्यु हैं और शांतता से सेवा करने वाले अनार्य लोग दास हैं। पहले बतलाए हुए व्यवसाय शूद्रों के लिए खुले थे। इससे स्पष्टतया विदित होता है कि दास शब्द से मतलब है उन अनार्य लोगोंका जो सेवा करते हैं। दास शब्द का अर्थ है मछली पकडने वाले। ऊपर दिए हुए श्लोक में कुलमित्र तथा आत्मनिवेदक ये दो शब्द और आए हैं। इन दो शब्दों में किसी जाति विशेष का उल्लेख नहीं है। जो अपने कुलका मित्र है, जिसका स्नेह आज का नहीं वरन् अपने पुरखों से चला आता है उसे भोज्यान्न जानना चाहिए। इसी के समान 'आत्मनिवेदक' शब्द की व्याप्ति भी बडी है। कुल्लुकभट्ट की टीका से मालूम होता है कि वह अनार्य शूद्र भोज्यान्न समझा जावे, जो खुद त्रैवर्णिकों के घर आकर कहता है कि 'हे आर्य, मेरी दशा बहुत बिगडी हुई है, मैं अन्न के लिए भटकता हूं। इससे मेरी इच्छा है कि मैं आपकी सेवा करके रहूं।" ऐसे विनीत वचनों से विनती करने वाले शूद्र का पकाया भोजन खाने में कोई हानि नहीं। यदि विचार करें तो मालूम होगा कि किसान, ग्वाल, नाऊ के निर्देश के बाद कुलमित्र, दास तथा आत्मनिवेदक शब्द आए हैं। उनका उल्लेख किसी जाति विशेष का नाम बिना लिखे ही किया है और वह किसी खास हेतु से किया गया है। कुलमित्र शब्द से शायद उच्च जाति का अर्थ निकल सके परन्तु दास तथा आत्मनिवेदक शब्दों से नीच जाति का ही बोध होता है। अब यह कहने में कोई हानि नहीं कि ऐसे लोगों का पकाया भोजन तथा पानी सेवन करने में कोई हान नहीं। इसी प्रकार—

कन्दुपक्वानि तैलेन पायसं दधिसक्तवः ।
द्विजैरेतानि भोज्यानि शूद्रगेहकृतान्यपि ॥

कूर्म पुराण०

'अर्थात् तैलपक्व अन्न, पायस, दही, सत्तू यद्यपि शूद्रों के घर में भी बने हों तब भी ब्राह्मण को खाने योग्य हैं।'

ऊपर दिए हुए श्लोक का कथन विचार करने योग्य है। शूद्रने अपने घरमें पकाए हुए पदार्थ और शूद्रने द्विज के घर आकर पकाए हुए पदार्थों में भेद है।

ऊपर के श्लोक में बताया है कि शूद्रने अपने घर में पकाई हुई चीजों में से कौन कौन सेवन करने योग्य हैं। अर्थात् वह उस भोजन का निषेध नहीं है जो शूद्रने ब्राह्मण के घर आकर पकाया है। पहले बताया ही गया है कि शूद्र को चाहिए कि वह द्विजों के घर भोजन पकावे। ऊपर के वचन में बताया है कि शूद्रों के घर जाकर क्या सेवन कर सकते हैं। इसी प्रकार—

आर्त्विजः कुलमित्रं च गोपालो दासनापितौ ।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥
कृषीवलः कुंभकारः क्षेत्रकर्षक एव च ।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना दत्वा स्वल्पपणं बुधैः ॥
पायसं स्निग्धपक्वं च यावकं चैव सक्तवः ।
पिन्याकं चैव तैलं च शूद्राद् ग्राह्यं द्विजातिभिः ।

कूर्म पुराण ७। १६

अर्थात् "किसान, कुलमित्र, गोपाल, दास, नाऊ, कुम्हार तथा खेतमें काम करने वाले लोगोंका पकाया हुआ भोजन खा सकते हैं। उन्हें थोडा वेतन भी देना चाहिए। पायस, तैलपक्व वा घृतपक्व वस्तुएं, पकाया हुआ सत्तू, पिन्याक,

तेल आदि पदार्थ-यदि द्विज शूद्रों से ले तो कुछ हानि नहीं।'

ऊपर दिए हुए वचन का भाव यह है कि उपर्युक्त शूद्रों को यदि रसोई पकाने के लिए नौकर रखना हो तो उन्हें कुछ वेतन देना चाहिए। वे गरीब हैं इसलिए उनसे काम मुफ्त में नहीं कराना चाहिए। उनसे हर किस्म का काम ले सकते हैं, यहां तक कि उनसे रसोई भी पकवा सकते हैं। ऊपरके श्लोकमें यह भी कहा है कि उनको नौकर रख कर अपने घरमें उनसे भोजन पकवा लें वा उनके घर का पकाया भोजन लेना चाहें तो कौन कौन चीजें लेना चाहिए। इससे मालूम होगा कि छूत अछूत की मात्रा उन दिनोंमें अधिक थी या कम और यह भी मालूम होगा कि छूत अछूत का विचार संकुचित दृष्टिसे होता था या उदारता से। इसी प्रकार–

दास– नापित – गोपाल– कुलमित्रार्धसीरिणः।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत्॥

यमस्मृति, पराशरस्मृति, अ० ११

इस श्लोक से विदित होगा कि इस बात में यम और पराशर ऋषि भी सहमत हैं। प्रायः सब स्मृतिकारों को यह मत मान्य है। तब यह कह सकते हैं कि उपर्युक्त शूद्रोंका भोजन खाने योग्य है।

घृतं तैलं तथा क्षीरं गुडं तैलेन पाचितम्।
गत्वा नदीतटे विप्रो भुञ्जीयाच्छूद्रभोजनम्॥

पराशर स्मृति, अ० ११

अर्थात् शूद्र के बनाए हुए निम्न लिखित पदार्थ ब्राह्मण नदी के तट पर जाकर भक्षण करे-घी, तेल, दूध, गुड, तथा तैलपक्व पदार्थ।

इस श्लोक में शूद्रभोजन शब्द आया है। उसका अर्थ है शूद्रने खुद के घर पकाई हुई चीजें। अर्थात् उससे यह अर्थ निकलता है कि शूद्र के बनाए हुए तैलपक्व वा घृतपक्व पदार्थ खाना चाहिए।

लवणं, मधु तैलं च दधि तक्रं घृतं पयः।
न दूष्येच्छूद्रजातीनां कुर्यात् सर्वस्य विक्रियाम् ॥

बृहत्पाराशर स्मृति अ० २

"लवण, शहद, तेल, दही, मही, घी, दूध आदि वस्तुएं यदि शूद्र के घर भी तैयार की गई हों तब भी दूषित नहीं होतीं। वे इन सब वस्तुओंका विक्रय कर सकते हैं।" यह बात अब भी प्रचलित है। शूद्र के घर का दूध अब भी चलता है। पर उसके हाथ का पानी नहीं चलता! कोई भी इस बात को नहीं सोचता कि दूध में फी सदी ९० अंश पानी रहता है। उत्तर हिन्दुस्थान में कच्ची रसोई और पक्की रसोई, दो प्रकार की रसोई रहती है। अथवा घी की बनी जितनी वस्तुएं हैं वे पक्की और पानीमें पकाई वस्तुएं कच्ची हैं। परन्तु खुद ही रसोई पका कर खाने वाले अर्थात् दूसरे का बनाया भोजन न खाने वाले शुद्ध से शुद्ध लोग भी तो बाजार की पूरी, कचोरी तथा तरकारी खाते हैं। इसी पद्धति के विषयमें ऊपर की स्मृति में कथन है। बृहत् पाराशरस्मृति में कहा है कि आपत्ति के समय चाहे जिसके घर का भोजन चल सकता है। देखिए—

दास-नापित-गोपाल-कुलमित्रार्धसीरिणः।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥
पर्युषितं चिरस्थं च भोज्यं स्नेहसमन्वितम्।
यवगोधूमावस्नेहो यथा गोरसविक्रयः ॥

आपद्गतो द्विजोऽश्नीयात् गृह्णीयाद्वा यतस्ततः।
न स लिप्येत पापेन पद्मपत्रमिवांभसा॥
स्थापितं शूद्रगेहेऽन्नं कटु पक्वं च यद्भवेत्।
नीत्वा नद्यादिके तद्वै प्रोक्ष्य भुञ्जन्न किल्विषी॥

— बृहत्पाराशरस्मृति, अ० ६

(४) 'दास, गोपालनेवाले, नाऊ, कुलमित्र, किसान तथा आत्मनिवेदक शूद्र होनेपर भी भक्ष्यान्न हैं। वासा या जिसको पक कर बहुत समय हो चुका है ऐसा अन्न भी घृतमिश्रित हो तो खा सकते हैं। आपत्तिके समय यव, गेहूं की घृतमिश्रित चीजें तथा गोरस की चीजें (शूद्र के घरकी होनेपर भी) द्विज खा सकता है या इधर उधर से (चाहे जहां से) ले सकता है।' इस प्रकार का वर्ताव करने पर भी उसे पातक नहीं लगता, जैसे कमल का पत्ता पानीसे भींगता नहीं। शूद्र के घरका कटु (चिर-पिरा) वा चुरा हुआ जो कुछ अन्न होगा, वह लेकर नदी आदि जलाशय के पास जाकर प्रोक्षण करके वह भोजन खाना चाहिए। ऐसा करनेसे पातक नहीं लगता।"

यह आज्ञा बहुत व्यापक है। यह केवल आपत्ति के समय के लिए ही है सही, पर आपत्तिकाल में इस प्रकार भोजन करने पर भी पातक नहीं लगता। यह बात शूद्र के घर शूद्रने ही पकाए भोजन के विषय में हुई। ध्यान रहे कि यह द्विजके घर आकर शूद्रके द्वारा पकाए हुए भोजन का निषेध नहीं है। शूद्रों की रहन सहन अस्वच्छ रहती है, वे मद्यमांस आदि खाते हैं इस से उनके घरकी कौनसी चीजें लेना चाहिए और कौनसी नहीं इस विषय का यह विचार योग्य ही है। परन्तु उन्हे अपने घर बुला-कर उनके द्वारा पकाया हुआ भोजन हो तो उसके सेवन से कोई

हानि नहीं है क्योंकि उसका निषेध किसी भी स्थान में नहीं है शूद्रों के घर जाकर उनका पकाया भोजन नहीं खाना चाहिए, इसका मतलब नहीं होता कि यदि वे द्विजों के घर नोकरी करें और वहां भोजन पकावें तो वह भोजन भी नहीं खाना चाहिए। अब तक जो विचार किया गया वह केवल इसी विषय में था कि शूद्रोंके घर जाकर उनकी पकाई हुई वस्तुओं में से क्या क्या खा सकते हैं। पराशरजीके मत के अनुसार आपत्तिकाल में चाहे जो पदार्थ (शाकाहार के) खाने में हानि नहीं है। आर्थात् आपत्ति न होने पर नहीं लेने चाहिए। दूसरों के मतानुसार कौनसे पदार्थ खा सकते हैं। ऊपर बताए ही गए हैं। परन्तु सब लोगों के मतसे यह सिद्ध होता है कि नाऊ, दास आदि के घर के पदार्थ लेने चाहिए। देखिए —

आपत्काले तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि।
मनस्तापेन शुध्येत द्रुपदां वा शतं जपेत् ॥

पराशरस्मृति, अ० ११

" यदि विप्र आपत्ति के समय शूद्र के घर भोजन करे तो वह पश्चात्ताप से शुद्ध होता है, या सौ बार मंत्र का जप करने से शुद्ध होगा। "

इस प्रकार आपत्ति के समय शूद्र के घर जाकर उसने तैयार किया हुआ भोजन खाने की आज्ञा पराशरजीने दी है। आपत्तिकाल में छूत अछूत और शुद्धता आदिका दोष नहीं है। इस विषय का याज्ञवल्क्य ऋषि का वचन इस प्रकार है—

दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देशविप्लवे।
आपद्यपि च कष्टायां सद्यः शौचं विधीयते ॥ २९ ॥

याज्ञवल्क्य स्मृ० अ० ३

'दान, विवाह, यज्ञ, संग्राम, देशका संकट, कष्ट पहुंचाने वाली आपत्ति आदि समयों में तत्काल शुद्धि होती है।'

सद्यः शुद्धि का अर्थ है उसी समय शुद्धि। विवाह या यज्ञमें अछूत मनुष्यका यदि स्पर्श हो जावे तो और समय में जिस प्रकार स्नान करने की आवश्यकता है, उस प्रकार स्नान करने की आवश्यकता नहीं होती, कारण यह कि इस प्रकार के स्पर्श का दोष ऐसे समय में उसी समय नष्ट हो जाता है। आजकल भी विवाह, यज्ञ, मेला आदि स्थानों में रोजमर्राके सदृश छूत अछूत तीव्रता से मानी नहीं जाती। उपर्युक्त स्मृति में कहा है कि लडाई में, देशपर कोई आपत्ति आने पर, राष्ट्रीय संकट में अथवा कष्टकी दशा में छूत अछूत का दोष न मानो। इसीसे मालूम होता है कि छूत अछूत का जो दोष है कितना काल्पनिक है। अंत्यजों में जो छूत अछूत का दोष है वह अग्नि की दाह शक्ति के सदृश स्वाभाविक नहीं है। जो दोष स्वभाविक है वह कभी भी नष्ट नहीं होता। अग्नि की दाहक शक्ति सर्व काल एक सी रहती है। वह विवाह या यज्ञ में, संग्राम या देशकी आपत्ति में कभी भी कम नहीं होती। यदि इसी के समान अत्यजों में छूत अछूत का दोष होता तो वह उपर्युक्त कार्यों के समय कम न हो सकता। वह कुछ खास समय पर घटता है या बिलकुल नष्ट हो जाता है और दूसरे समय माना जाता है, इसीसे सिद्ध है कि वह एक निरी कल्पना है। उसका उद्भव कल्पना सृष्टिमें है। इसीसे कहना पडता है कि वह सच नहीं है वरन् झूट है। प्राचीन विवाह की प्रथा के अनुसार छूत अछूत का विचार किस प्रकार था सो देखें।—

चतस्त्रो विहिता भार्या ब्राह्मणस्य पितामह।
ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या, शूद्रा च रतिमिच्छतः ॥ ४ ॥

स्नानं प्रसाधनं भर्तुः दन्तधावनमंजनम्।
हव्यं कव्यं च यच्चान्यत् धर्मयुक्तं गृहे भवेत् ॥ ३ ॥
न तस्यां जातु तिष्ठन्त्यां अन्या तत्कर्तुमर्हति।
ब्राह्मणी त्वेव कुर्याद्वा ब्राह्मणस्य युधिष्ठिर ॥ ३३ ॥
अन्नं पानं च माल्यं च वासांस्याभरणानि च।
ब्राह्मण्येतानि देयानि भर्तुः सा हि गरीयसी ॥ ३४ ॥

महाभारत अनुशा० अ० ४७

(५) ब्राह्मण को अधिकार है कि वह चार स्त्रियां करे। वह ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या और रति की इच्छा करनेवाला हो तो शूद्री इस प्रकार चार स्त्रियां रख सकता है। पतिके लिए स्नान आभूषण, वस्त्रादि, दतौन, अंजन, तथा हव्य कव्य आदि जो कुछ घरका काम होगा वह काम ब्राह्मणी जवतक घर में है तव तक दूसरी स्त्रियों को नहीं करना चाहिए। उपर्युक्त काम ब्राह्मण पतिके लिए ब्राह्मण स्त्री को ही करने चाहिए। ब्राह्मणी को चाहिए कि वह अन्न, पान, फूल, वस्त्र, आभूषण आदि पति को दे क्यों कि वह ज्येष्ठा है।"

महाभारत के इस वचन में कहा है कि ब्राह्मण को चारों वर्णों की स्त्रियों के साथ विवाह करने का अधिकार है। इस से मालूम होता है कि चारों वर्णों की स्त्रियां इस प्रकार एक ही घर में ब्राह्मण के यहां रह सकतीं थीं। इससे स्पष्ट है कि एकही आश्रम में एक ही पति की भिन्न जाति की स्त्रियों में छूत अछूत का विचार तीव्र न होगा। यह तो स्पष्ट ही है कि ब्राम्हणी का मान सवमें श्रेष्ठ तथा शूद्री का सवसे हलका था। ऊपर कहा है कि जव ब्राम्हणी घर में विद्यमान हो तव हव्य-कव्य, स्नान, भक्ष्य, भोजन आदि का इंतजाम दूसरे वर्ण की स्त्रियों को नहीं करना चाहिए। परन्तु घरमें रहते हुए भी 'स्त्रीधर्म' के अनु-

सार यदि वह अछूत हो जावे, घरमें उपस्थित न हो, दूसरे गांव को गई हो, या मृत हो, तो दूसरी स्त्रियां वह काम कर सकतीं हैं। यही ऊपर लिखे वचन का भाव है। 'न तस्यां जातु तिष्ठन्त्यां अन्या तत्कर्तुमर्हति ॥' उस ब्राह्मणी की उपस्थिति में दूसरों को चाहिए कि वे काम न करें। पति के लिए भोजन आदि बनाने का पहला हक ब्राह्मणी का है। परन्तु उसकी अनुपस्थिति में वह उसी को प्राप्त होगा जो उस समय मकान में विद्यमान हो।

कुछ समय के लिए मान लीजिए कि किसी ब्राह्मण ने ब्राह्मणी और शूद्री दोही स्त्रियों से विवाह किया। तब स्नान के लिए पानी देना, भोजन बनाना आदि काम ब्राम्हणी ही करेगी। परन्तु यदि वह मर जावे तो सब काम शूद्री को ही करना होगा। इसीप्रकार की आपत्ति के समय ब्राह्मणी की संमति से दूसरी स्त्रियां भी वे सब काम कर सकतीं हैं। यह प्रश्न छूत अछूत का वा शुद्धता का नहीं है वरन् केवल मान तथा प्रतिष्ठा का है। यदि छूत अछूत इतनी तीव्रता से उस समय मानी जाती जैसी कि वर्तमान समय में मानी जाती है, तो न कहा जाता कि 'ब्राह्मणीकी उपस्थिति में स्नान के लिए पानी तथा भोजन देनेका काम दूसरों को नहीं करना चाहिए।' इस प्रकार के कथन से यह भाव निकलता है कि मौका पडने पर वे काम दूसरों से भी कराए जाते थे। अर्थात् ब्राह्मणी की अनुपस्थितिमें दूसरी स्त्रियां वे काम करें या ब्राह्मणी दूसरे कामों में लगी हो तब वे स्त्रियां काम करें यदि ब्राह्मणी रोटी बनाती हो तो तवे पर रोटी जल जाने को छोड कर वह पति को स्नान के लिए पानी देने न जावे। उस समय यदि शूद्री पानी देवे तो कोई हानि नहीं। परन्तु यदि ब्राह्मणी और शूद्री दोनों को फुरसत है और ब्राह्मणी की इच्छा है कि 'मैं पानी दूं' तो वह काम शूद्री नहीं कर सकती। इन सब प्राचीन

व्यवहारों से विदित होता है कि शूद्रों का स्पर्श दोषकारक नहीं समझा जाता था । वे घर में रह सकते थे और सब काम कर सकते थे , परन्तु उनका मान वर्णके क्रमसे आखीर का था । ऐसा भी नहीं दिखाई देता कि ब्राह्मण पहले ब्राह्मणी से विवाह करके पश्चात् दूसरोंसे विवाह करते थे। आगे दिया हुआ उदाहरण बताता है कि ब्राह्मणने पहले ही क्षत्रि कन्याय से विवाह किया--

कश्यपस्य च पुत्रोऽस्ति विभांडक इति श्रुतः ।
ऋष्यशृंग इति ख्यातस्तस्य पुत्रो भविष्यति ॥ ४ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु रोमपादःप्रतापवान् ।
अंगेषु प्रथितो राजा भविष्यति महाबलः ॥७॥

वा ० रामायण, बा ० स ० ९

वर्षेणैवागतं विप्रं तापसं च नराधिपः ।
प्रत्युद्गम्य मुनिं प्रह्वः शिरसा च महीं गतः ॥ ३० ॥
अर्घ्यं पाद्यं च प्रददौ न्यायतः सुसमाहितः ।
वव्रे प्रसादं विप्रेन्द्रात् मा विप्रं मन्युराविशेत् ॥ ३१ ॥
अन्तःपुरं प्रवेश्यास्मै कन्यां दत्त्वा यथाविधि ।
शान्ता शान्तेन मनसा राजा हर्षमवाप सः ॥३२ ॥
एवं स न्यवसत् तत्र सर्वकामैः सुपूजितः ।
ऋष्यशृंगो महातेजाः शांतया सह भार्यया ॥ ३३ ॥

वा० रामा० बा० स० १०

तृतीयं सवनं चैव राज्ञोऽस्य सुमहात्मनः ।
चक्रुस्ते शास्त्रतो दृष्ट्वा यथा ब्राह्मणपुंगवाः ॥ ७ ॥
ऋष्यशृंगं पुरस्कृत्य कर्म चक्रुर्द्विजर्षभाः ।
अश्वमेधे महायज्ञे राज्ञोऽस्य सुमहात्मनः ॥ २ ॥

वा० रामा ० बा ० स ० १४

विभाण्डक नामका कश्यप का पुत्र था। उसके ऋष्यश्रृंग नाम का पुत्र हुआ। अंगदेश के राजा रोमपाद उसे बडे सन्मान से बुला लाया। उसे अर्घ्य, पाद्य देकर उस की पूजा की। इसके उपरान्त राजा उस ब्राह्मण को अन्तःपुरमें ले गया और अपनी कन्या का विवाह उसके साथ यथाविधि किया। उस शांता नामकी धर्मपत्नी के साथ ऋष्यश्रृंग ब्राह्मण राजा के ही घर रह गया। आगे चलकर राजाने अश्वमेध यज्ञ किया। उस में सब ब्राह्मणों ने सब विधि शास्त्र में बतलाई हुई रीति के अनुसार किये। उन ब्राह्मणों में श्रृंगऋषी ही प्रमुख थे।'

उपर्युक्त वाल्मिकीय रामायण की कथा में वर्णन है कि ब्राह्मण का पहला विवाह क्षत्रिय कन्या के साथ हुआ। उस ब्राह्मण का विवाह पहले ब्राह्मण कन्या के साथ नहीं हुआ था। इस में तीन बातें विचारणीय हैं। (१) ब्राह्मण का विवाह क्षत्रिय कन्या के साथ हुआ, (२) वह ब्राह्मण क्षत्रिय के ही घर अपनी स्त्री के साथ रहा, (३) यज्ञ में सब ब्राह्मणोंने उसे सर्व- श्रेष्ठ माना। इस से सिद्ध होता है कि क्षत्रिय कन्या के साथ विवाह करने पर भी या क्षत्रिय का दामाद होने पर भी वह ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मणों की बराबरी का समझा जा सकता है। मालूम होता है उस समय की यह साधारण प्रथा थी। क्यों कि इतने बडे यज्ञ में उसके विरुद्ध किसीने भी आक्षेप नहीं किया। दूसरी बात यह कि ब्राह्मणी स्त्री न होने से उस क्षत्रिय स्त्री से ही ऋष्यश्रृंग अपना भोजन आदि बनवाता होगा। यदि उसके ब्राह्मण स्त्री भी होती तब तो यह मान क्षत्रिय स्त्री को नहीं मिलता। इस पर से कह सकते हैं कि अपने वर्ण को छोड दूसरे वर्ण की स्त्री से विवाह हुआ हो तो उसी से भोजन आदि काम कराने में कोई हानि नहीं।

छांदोग्य उपनिषद् में लिखा है कि रैक्व नामक ब्राह्मण का विवाह जानश्रुती नामक क्षत्रिय की कन्या के साथ हुआ । इस जानश्रुती को रैक्वने शूद्र ही कहा है ब्राह्मण का हीन वर्णों की कन्याओं के साथ विवाह होने के कई उदाहरण हैं। इस से कहना पडता है कि इस दृष्टिसे भी आजकल के सदृश छूत अछूत का विचार प्राचीन काल में नहीं था।

(६) अब देखें कि गुरुकुलों में भोजन व्यवहार किस प्रकार का था ? और उस पर से छूत अछूत के संबंध में कैसा विचार था। जिन का उपनयन संस्कार हो चुका है ऐसे सब विद्यार्थी गुरुकुल में प्रवेश कर सकते थे। कई आचार्यों का मत है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन तीन वर्णों को जन्म से ही उपनयन का अधिकार है। परंतु आपस्तंब धर्मसूत्रकारों का मत कुछ विपरीत है—

अशूद्राणामदुष्टकर्मणामुपनयनं वेदाध्ययनम्० ॥ ५ ॥

आपस्तंब धर्मसूत्र १ । १ । १

'शूद्रों को छोड शेष त्रैवर्णिक (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) आर्य यदि दुष्ट कर्म करने वाले न हों तो उसका उपनयन करना चाहिए तथा उनसे वेद का अध्ययन कराना चाहिए। '

इस सूत्र में स्पष्टतया कहा है कि सदाचारी त्रैवर्णिकों का ही उपनयन कराया जाय। अर्थात् ब्राह्मणादि वर्णों में यदि कोई दुष्कर्म करने वाले हों तो उनका उपनयन नहीं कराना। वर्तमान समय में इस नियम की ओर ध्यान नहीं दिया जाता। आजकल आचरण की ओर दृष्टिक्षेप न कर केवल यह देखकरही उसका उपनयन किया जाता है कि उसका जन्म किस वर्ण में हुआ है। पहले केवल सदाचारी त्रैवर्णिकों का ही उपनयन होता था। इस प्रकार उपनयन संस्कार हो जाने पर तीनों वर्णों के छात्र

गुरुकुल में वा आचार्य कुलमें दर्ज होते थे। और वहां सब विद्यार्थी एक से ही रहते थे। श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध में कथा है कि सुदामा ब्राह्मण और श्रीकृष्णजी दोनों सांदीपनी नामक गुरु के घर विद्याध्ययन के लिए रहे थे। वहां वे समिधा लाना आदि काम समानता से करते थे। इसी पहिचान के कारण आगे चल कर सुदामा श्रीकृष्णजी के पास कुछ धन मांगने गया था और वहां पहुंचने पर श्रीकृष्णजी के घर ही उसने भोजन किया। देखिए—

ब्राह्मणस्तां तु रजनीं उषित्वाऽच्युतमंदिरे।
भुक्त्वा पीत्वा सुखं मेने आत्मानं स्वर्गतं यथा॥ १२॥
भागवत। स्कं० ११।८१

'वह सुदामा ब्राह्मण उस रात को श्रीकृष्णजी के ही घर रहा और उसने वहीं भोजन किया।' गुरुकुल में भी वे बिलकुल समानतासे कालक्षेप करते थे। भोजनादि में छूत अछूत नहीं थी। वैश्य के बालक भी विद्याध्ययन के लिए इसी तरह समानता से रखे जाते थे। त्रैवर्णिकों में छूत अछूत का झगडा न था। गुरुकुल के विद्यार्थी अन्न को मांगते थे; तैयार भोजन की भिक्षा मांग कर लाते थे और उसका कुछ नियत हिस्सा गुरुजी को अर्पण करते थे और गुरुजी भी उसका स्वीकार करते थे।

धर्मशास्त्रकारों का कथन है कि ब्रह्मचर्यव्रत का स्वीकार कर जब कोई बालक गुरुकुल में रहता है तब उसे अन्न की भिक्षा मांग कर लानी पडती है और वह अपने गुरुजी को अर्पण करनी पडती है और तदुपरान्त स्वतः खानी चाहिए। देखिए—

तत्समाहृत्य उपनिधाय आचार्याय प्रब्रूयात्॥ ३१॥
तेन प्रदिष्टं भुञ्जीत॥ ३५॥

विप्रवासे गुरोः आचार्यकुलाय ॥ ३६ ॥
तैर्विप्रवासेऽन्येभ्योऽपि श्रोत्रियेभ्यः ॥ ३७ ॥
आर्याय वा पर्यवदध्यात् ॥ ४० ॥
अंतर्धिने वा शूद्राय ॥ ४१ ॥

टीका-आर्यः त्रैवर्णिकः तस्मै अनुपनीताय पर्यवदध्यात्। अंतर्हितं हि तस्य शूद्रत्वम्। अशौचेषु आचार्यः पर्यवदध्यात्। शूद्राय दासाय स्वामितुल्यत्वात् ॥

(आपस्तंब धर्मसूत्र०१।१४१)।

'अन्न मांग लाने पर वह गुरूजी के सन्मुख रखकर उन्हे निवेदन करना चाहिए। जब वे आज्ञा दें तब भोजन करना चाहिए। यदि गुरु न हो तो आचार्य कुल को बतलाना चाहिए, यदि वे भी न हों तो दूसरे श्रोत्रियोंको. वे भी न हों तो जिनका उपनयन नहीं हुआ ऐसे बालकों को और वे भी न हों तो गुरुजी के दास को बतलाना चाहिए।" (क्यों कि गुरु के दास का शूद्रत्व गुरु के सन्निध रहने से लोप हो जाता है।) इससे यह रीति मालूम होती है कि प्रथम गुरुजी को देकर फिर खुद लेनी चाहिए। यदि गुरू की इच्छा हुई तो वे लाई हुई सब भिक्षा खुद अपने ही लिए रख लेते थे। त्रैवर्णिकों के बालकों का एकत्र निवास, उनका एक साथ भीख के लिए जाना, अन्न ले आनेपर उसे गुरुको अर्पण करना आदि सब बातें उस समय की समता की प्रथा को दरसाते हैं। जो जो विद्यार्थी गुरुकुल में दर्ज किए जाते थे वे सब एक से ही रहते थे। गुरुकुल में सधनता, दरिद्रता, जातिका उच्च नीच भाव, राजा तथा प्रजा का संबंध आदि के कारण होने वाली विषमता लवमात्र नहीं थी। राजपुत्र, सरदार का लडका, ब्राह्मण कुमार या दूसरे साधारण बालक सब की रहन सहन एकसी रहती थी। इससे स्पष्ट है कि जहां इस

प्रकार समता की रहन सहन है, वहां छूत अछूत के कारण उत्पन्न होने वाली विषमता का होना असम्भव है। हम लोग त्रैवर्णिकों के बालकों की रहन सहन के विषय में पढ चुके। अब देखना है कि द्विज को छोड दूसरे वर्ण के बालकों का प्रवेश गुरुकुल में होता था या नहीं।

तेषां संस्कारेप्सवो व्रात्यस्तोमेनेष्ट्वा काम-
मधीयीरन् व्यवहार्यो भवतीति वचनात् ॥ ४३ ॥

पारस्कर गृह्य सूत्र० २।५

'पतितों का उपनयन संस्कार व्रात्यस्तोम करने के बाद करना चाहिए और तत्पश्चात् वे अध्ययन कर सकते हैं।' शूद्रों में कई लोग ऐसे थे जो पतित द्विज थे। अर्थात् द्विज होने पर भी कर्महीन हो जाने से, वा पंच महापातकों में से कोई पातक गलती से हुए हों तो वे पतित होते थे और शूद्र बनते थे। ऐसे लोगों को व्रात्यस्तोम करके फिर द्विज बना लेना चाहिए और तब उन्हें अध्ययन करने देना चाहिए। मालूम होता है कि उपर्युक्त नियम इस दृष्टिसे बनाया गया था कि जहां तक बने कोई भी अनपढ न रहे। यह हुआ पतित द्विजों का हाल। पर शूद्रों का क्या हाल था?

शूद्राणामदुष्टकर्मणामुपनयनम् ॥

-पारस्कर० भाष्य. २।५

'सदाचारी शूद्रों का उपनयन करना चाहिए।' सदाचारी शूद्र कौन है और सत्शूद्र कैसे बन सकते हैं इस विषय में पीछे कह आये हैं। उसी प्रकार-

शूद्राणां ब्रह्मचर्यत्वं मुनिभिः कैश्चिदिष्यते।

याज्ञवल्क्य ० अ० १

यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्मे च सततोत्थितः।
तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद् द्विजः॥

महाभारत वन० २१५। १३

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा चरितव्रतः।
गायत्रीं मम वा देवीं सावित्रीं वा जपेत् ततः॥

वृद्ध गौतम स्मृ० अ० १६

याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा है कि कई मुनियों का मत है कि शूद्रों को भी ब्रह्मचर्य से रहना चाहिए। 'कहना ही पडता है कि उपनयन के पश्चात् ब्रह्मचर्य का आरम्भ होता है इस से जिन मुनियों के मत के अनुसार शूद्रों के लिए ब्रह्मचर्य की रक्षा आवश्यक है उनके मतानुसार कुछ शर्तों पर शूद्रों को उपनयन का अधिकार प्राप्त होता था। व्यासजीने महाभारत में लिखा है कि 'जो शूद्र शम दम सत्यपालन तथा धर्म से चलने वाला है वह ब्राह्मण है'। इससे ध्वनित होता है कि सदाचार से चलने वाले शूद्रको ब्राह्मण के अधिकार मिलते हैं। वृद्ध गौतमजीने कहा है कि 'सदाचार से रहनेवाले शूद्र को गायत्री मंत्र जपने का अधिकार है।' और यह बात तो प्रसिद्ध ही है कि उपनयन संस्कार के बिना गायत्री मंत्र के जप का अधिकार प्राप्त नहीं होता। तब यह सिद्ध होता है कि शूद्रों का भी उपनयन होता था। अर्थात् सदाचार से रहने वाले शूद्रों का उपनयन होता था और वे गुरुकुल में दर्ज किए जाते थे। 'उपनयन' संस्कार केवल इसी लिए किया जाता था कि बालकों को गुरुकुल में प्रवेश मिले। इस संस्कार का अर्थ यही है कि गुरु के पास ले जाना।' तब यह कह सकते हैं कि शूद्रों का भी जब गुरुकुल में प्रवेश होता था, तब वे भी समता से ही रखे जाते थे। मानना आवश्यक हो

जाता है कि पराशर, वसिष्ठ, व्यास, कणाद, मंदपाल मांडव्य आदि हीन जाति में उत्पन्न हुए पर, उनका उपनयन हो जाने पर वे गुरुकुल में पहुंचाए गए। क्यों कि वे वेद जाननेवाले बने और श्रेष्ठ हुए। विना गुरुकुल में गए वेद का अध्ययन नहीं हो सकता था और उपनयन के विना गुरुकुल में प्रवेश नहीं हो सकता था। जिस समय धीवर, चांडाल, गणिका आदि स्त्रियों के बालकों का प्रवेश गुरुकुल में हो सकता था किस प्रकार कह सकते हैं कि उस समय सत् - शूद्रों के बालकों का प्रवेश गुरुकुल में नहीं हो सकता था? इतिहास बडे बडे लोगों का ही लिखा जाता है। व्यास, वाल्मीकि आदि लोग लोकमान्य हुए इसी कारण उनके नाम इतिहास में लिखे गए; परंतु उन्होंके सदृश हीन स्त्रियों से जन्म पाकर भी गुरुकुल में जिनका प्रवेश हुआ और जिन लोगों ने वहां वेद का अध्ययन किया ऐसे लोगों की संख्या यद्यपि बहुत बडी होगी, तब भी उनकी फहरिस्त आज इतने दिनके पश्चात् प्राप्त होना सम्भव नहीं। इतना अवश्य सिद्ध है कि व्यास, वसिष्ठ, पराशर को वेद की शिक्षा दी गई और वे विद्वान् तथा ब्रह्मविद् बन जाने पर सब लोगों ने मान लिया कि वे ब्राह्मण थे। " यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः॥ ' श्रेष्ठ लोगों के आचरण के समान ही साधारण लोगों का आचरण रहता है। इस नियम के अनुसार मानना पडता है कि उस समय वह प्रथा ही थी।

ऐतरेय महीदास एक शूद्री का पुत्र था। वह आगे चलकर वेदवेत्ता ब्राह्मण हुआ और उसने ऋग्वेद के संबंध में ऐतरेय ब्राह्मण नामक ग्रन्थ बनाया। यह ' इतरा ' स्त्री का पुत्र था इसलिए ऐतरेय कहलाया। नहीं मालूम कि इसका पिता कौन था। इसीलिए उसका नाम उसकी मा के नाम से चलता है।

'इतर' शब्द का अर्थ 'नीच' होता है। " इतरस्त्वन्यनीचयोः इत्यमरः। " इससे स्पष्ट है कि महीदास की मा इतरा नीच जाति की शूद्री थी। ऐतरेय भाष्य के आरम्भ में सायणाचार्यने भाष्य के रचयिता के विषय में इस प्रकारकी कथा दी है कि इस इतरा का पुत्र ऐतरेय महीदास वेदवेत्ता हुआ और सर्वमान्य ग्रन्थकर्ता बना। कवलऐलूष की कथा भी इसी प्रकार है।

ऋषयो वै सरस्वत्यां सत्रमासत॥ ते कवलऐलूषं सोमादनयन्॥
दास्याः पुत्रः कितवो अब्राह्मणः कथं नो मध्ये दीक्षिष्टेति॥
तं बहिर्धन्वोदवहन्॥
अत्रैनं पिपासां हन्तु सरस्वत्या उदकं मा पादिति॥
स बहिर्धन्वोदूढः पिपासयावित्त एतदपोनप्त्रीयमपश्यत्॥
ते वा ऋषयो अब्रुवन् विदुर्वा इमं देवा इमं ह्वयामहै तथेति॥

ऐतरेय ब्राह्मण २। १९

'ऋषी सरस्वती नदी के किनारे पर सत्र कर रहे थे। उन्होंने कवलऐलूष को बाहर निकाल दिया क्योंकि वह दासीपुत्र, जुंआडी तथा अब्राह्मण था और इसी लिए उन ऋषियों में रहकर दीक्षा ग्रहण करने के योग्य न था। और उसे नदी का पानी पीने से भी मना कर दिया। वह बाहर गया तब उसे बहुत प्यास लगी। उस समय उसे वेद का अपोनप्त्रीय सूक्त दिखा। तब ऋषियों को बहुत आश्चर्य हुआ! उन्होंने कहा कि इसे देवता अनुकूल है इस से हम भी इसको भीतर बुलावें।" ऐसा कहकर उन्होंने दासीपुत्र कवलऐलूषको अपने में शामिल कर लिया। विद्वत्ता के कारण मनुष्य का सन्मान किस प्रकार होता था इसका यह अच्छा उदाहरण है। जिन लोगों

ने उसे नीच- कुलोत्पन्न कह कर त्याग दिया था उन्होंने उसकी वेदविद्या को जानकर अपने में शामिल किया इससे कह सकते हैं कि जब शूद्र विद्वान् हो जाते थे तब वे इस योग्यता के समझे जाते थे कि वे ब्राह्मणों में बैठकर यज्ञ का काम चलाते थे।

सत्यकाम जाबाल की भी कथा इसी प्रकार है। जबाला नामक स्त्री थी। उसके सत्यकाम नामक लड़का हुआ।

स ह हारिद्रुमत गौतममेत्योवाच ।
ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्यामि उपेयां भगवंतमिति ॥ ३ ॥
तं होवाच किं गोत्रो नु सौम्यासि ।
स होवाचनाहमेतद्वेद यद्‌गोत्रोऽहमस्मि अपृच्छं मातरम् ।
सा मा प्रत्यब्रवीत् ।
बह्वहं परिचरन्ती परिचारिणी यौवने त्वामालभे ।
साहमेतन्न वेद यद्‌गोत्रस्त्वमसि ।
जबाला तु नाम अहमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि इति
सोऽहं सत्यकामो जाबालोऽस्मि भोः ।

छांन्दोग्य उ० ५ । ४

'उसने गौतम के पास जाकर कहा कि मैं ब्रह्मचर्य से रहना चाहता हूं मेरा उपनयन करो। तब गौतम ने उससे पूछा, 'बालक तेरा गोत्र क्या है ? तब सत्यकाम ने कहा, मुझे मालूम नहीं। मैंने जब अपनी माता से पूछा तब वह बोली कि जब मैं युवावस्थामें परिचारिणी थी, उस समय तेरा जन्म हुआ है। इस लिए मैं नहीं जानती कि तेरा गोत्र क्या है ? मेरा नाम जाबाला है और तेरा नाम सत्यकाम है। तब हे आचार्य, मैं सत्यकाम जाबाल हूं।" यह सुन गौतम बोले, 'यह सत्य से च्युत नहीं हुआ इस लिए यह ब्राह्मण ही होना चाहिए।' इसके पश्चात् उन्होंने सत्यकाम का

उपनयन किया और उसे वेद की शिक्षा दी। आगे चलकर सत्यकाम खुद आचार्य बन गया।

वास्तव में गौतम को यह पता भी न था कि सत्यकाम सचमुच किस जाति का था, उसका बाप कौन था आदि। परन्तु केवल इस लिए कि वह खुद सच बोला और उसकी माता सच बोली, गौतम ने उसका उपनयन कराया और उसे वेदकी शिक्षा दी। इसी से उस समय की प्रथा क्या थी सो ज्ञात होगा। सारांश यह कि गुरुकुल में ऐसे भी छात्र दर्ज किए जाते थे जिनका कुल अज्ञात हो तथा जो हीन कुल में उत्पन्न हुए हों। और गुरुकुल में सब विद्यार्थी समता से रहते थे। यह बात कहीं भी नहीं पाई जाती कि गुरुकुल के विद्यार्थियों के साथ विषमता का बर्ताव रहता था अथवा उन विद्यार्थियों में छूत और अछूतों के भाग अलग अलग रहते थे। इन सब बातों का विचार करने से स्पष्टतया विदित होता है कि गुरुकुल में जो विद्यार्थी आते थे वे जात पात से हीन भी क्यों न हों उनका उपनयन संस्कार होकर आचार्य ने उन्हें गुरुकुल में दर्ज कराने भर की देर थी। उतना कार्य हो जानेपर उनका अधिकार दूसरे विद्यार्थीके समान ही रहता था। चांडाली-पुत्र, शूद्री-पुत्र, दासी-पुत्र, गणिका-पुत्र, आदि के उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि बहुतेरी हीन जातियों के बालकों का प्रवेश गुरुकुल में होता है। "ऋषि के कुलकी खोज न करनी चाहिये" इस अर्थ की एक लोकोक्ति है। मालूम होता है वह छूत अछूत का प्रचार बढने पर ही चल पडी होगी। उपर्युक्त नियम इस लिए किया गया है कि कोई निःस्पृह मनुष्य, हीन जातियोंपर अछूत का दोष सदा के लिए लगा देने के पश्चात् ऋषियों के कुल के विषय में खोजकर कहीं उच्च वर्णीयों से जवाब न मांगे। परन्तु वर्तमान युग विचार का युग है। इस विचार युग में, जिस प्रश्नका भय था

वह प्रश्न तो उपस्थित हो ही गया। अस्तु, अब तक जो कथन हुआ उससे यह सिद्ध होता है कि गुरुकुल की शिक्षा पद्धति समानताकी थी।

(७) पीछे बताया ही गया है कि हीन जाति के लोगों से कौनसी वस्तुएं लेनी चाहिए। समानता की शिक्षाप्रणाली द्वारा १०। २० साल शिक्षा पाकर विद्वान् गुरुकुलसे निकलते थे। क्या कह सकते हैं कि ऐसे विद्वान् लोगों में छूत अछूत की विषमता फिरसे उत्पन्न होगी।

तं सखायः पुरोरुचं यूयं वयं च सूरयः।
अश्याम वाजगन्ध्यं सनेम वाजपस्त्यम् ॥ १२ ॥
ऋग्वेद ९। ९२

'हे मित्रों! तुम और हम विद्वान मिलकर उस बलदायक तथा सुगंधित अन्न को (अश्याम) खावें।'

इसमें कथन है कि मित्रता तथा विद्वत्ता के कारण एकत्रित हुए लोगों का सह भोजन होता था। गुरुकुल से निकले हुए विद्वान् मित्रों का जात पात के विचार को अलग रख कर भोजन होता होगा। इसो लिए कहा है:—

सर्ववर्णानां स्वधर्मे वर्तमानानां भोक्तव्यम्
शूद्रवर्ज्यमित्येके ॥ १३ ॥
तस्यापि धर्मोपनतस्य ॥ १४ ॥
आपस्तंब धर्मसूत्रम्। १। ६। १८

टीका — शूद्रवर्जितानां स्वधर्मे वर्तमानामां। सर्वेषामेव वर्णानाम् अन्नं भोज्यम् ॥ तस्यापि शूद्रस्य अन्नं भोज्यम्। यदि असौ धर्मार्थमुपनतः आश्रितो भवति ॥

" स्वधर्म के अनुसार चलने वाले सब वर्णियोंके घर अन्न खाना चाहिए। कई लोगों का मत है कि शूद्रों को छोड देना चाहिए। परन्तु यदि वह भी धार्मिक हो तो उसके घर का भी खाने में कोई हानि नहीं।" आपस्तंब सूत्रकार का कथन है कि शूद्रों के घर का न खाना चाहिये। और कई लोगों का कथन है कि खाना चाहिए। ये दोनों मत ऊपर के कथन में आए हैं। तथापि विद्वान् तथा धार्मिक शूद्र का अन्न खाने में कोई हानि नहीं। श्रीरामचन्द्रजी ने शवरी के आतिथ्य का स्वीकार किया। वह भी वह स्त्री धार्मिक थी इसी लिए! देखिए—

पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद् यथाविधि ॥ ७ ॥

वा० रामाय० अ० ७४

' शबरीने विधिपूर्वक पाद्य आचमनीय आदि सब रामचन्द्रजी को दिया। ' और उन्होंने उसका स्वीकार किया। शबरी भील जाति की स्त्री थी। पर उसके घर का पानी श्रीराम चन्द्रजीने ग्रहण किया। भील जाति ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा शूद्र जातियों के बाहर की जाती है, पर उसके भी घरका पानी श्रीरामचन्द्र जीने लिया। इससे उस समय की प्रथा का अनुमान कर सकते हैं। इसी विचार से वाल्मिकी रामायण में दिया हुआ गुह का किया हुआ रामचन्द्रजीके आतिथ्य का वर्णन पढने योग्य है—

तत्र राजा गुहो नाम रामस्यात्मसखः सखाः।
निषादजात्यो बलवान् स्थपतिश्चेति विश्रुतः ॥३३
ततो निषादाधिपतिं दृष्ट्वा दूरादुपस्थितम्।
सह सौमित्रिणा रामः समागच्छद् गुहेन सः ॥३४

तमार्तः संपरिष्वज्य गुहो राघवमब्रवीत् ।
तथाऽयोध्या तथेदं ते राम किं करवाणि ते ॥ ३५
ततो गुणवादन्नाद्यं उपागृह्य पृथग्विधम् ।
अर्घ्यं चोपानयच्छीघ्रं वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ३७
भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च लेह्यं चैतदुपस्थितम् ॥ ३८
वा० रामा० अयो. स० ५०

" वह निषादों का राजा गुह था, जो रामचन्द्रजी का परम मित्र था। जब उसकी रामचन्द्रजी से भेंट हुई तब गुह ने रामचन्द्रजीको आलिंगन किया। और कहा, 'हे राम! यह स्थान आप के लिए अयोध्या के सदृश ही है। अब बताइए मैं तुह्मारे लिए क्या करूं, तदनंतर अच्छा अच्छा खादु भोज्य, भक्ष्य, पेय, लेह्य इस प्रकार चतुर्विध भोजन वह लाया और अर्घ्य तथा आचमनीय रामचन्द्रजी के सन्मुख रख कर बोला, 'हे राम! यह सब तैयार है।'

रामचन्द्रजी सूर्यवंशी क्षत्रिय थे अर्थात् आर्य द्विज थे और गुह निषाद (या चंडाल) जातीका अनार्य था। यह तो कहही नहीं सकते कि निषाद या चंडाल के घर ब्राह्मणलोग नौकरी करते थे और भोजन पकाते थे। इस बात का तो निश्चय ही है कि उन दिनों ब्राह्मणों की ऐसी अवनती नहीं हुई थी कि वे अपना अध्ययन-अध्यापनका काम छोडकर शूद्र की सेवा करें। तब यह स्पष्ट है कि निषाद के घर निषादही भोजन पकाते थे। राम, लक्ष्मण और सीता तीनों के लिए गुह चार प्रकारका भोजन और पानी लाया, तब उसे निश्चय हो होगा कि वे उसके दिए भोजन का स्वीकार करेंगे। यदि आज कल के समान छूत अछूत का दोष माना जाता तो गुह भोजन लाता ही नहीं। यदि किसी मनुष्य के स्वागत के लिए कोई वस्तु लानी हो तो वह ऐसी ही होनी चाहिए जिस का स्वीकार वह मनुष्य करे। इस दृष्टि से

देखें तो मालूम होता है कि निषाद भोजन लाया वह इसी लिए कि उसका पकाया हुआ भोजन द्विज खाते थे। यह बात बिलकुल भिन्न है कि रामचन्द्रजीने उस भोजन का स्वीकार न किया क्यों कि उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि वे वनवास में कंदमूल ही खावेंगे और इस प्रतिज्ञा पर वे दृढ थे। परन्तु इस अस्वीकृति वा त्याग का कारण यह कदापि नहीं था कि वह 'निषादोंका अर्थात् अछूत जातियों का बनाया हुआ था।' ब्राह्मण के भेष में आए हुए रावणका आतिथ्य सीताने जिस प्रकार किया उसका वर्णन इस प्रकार है—

द्विजातिवेषेण हि तं दृष्ट्वा रावणमागतम्।
सर्वैरतिथिसत्कारैः पूजयामास मैथिली ॥ ३३ ॥
उपानीयासनं पूर्वं पाद्येनाभिनिमंत्र्य च ।
अब्रवीत् सिद्धमित्येव तदा तं सौम्यदर्शनम् ॥ ३४ ॥
इयं बृसी ब्राह्मण काममास्यतां इदं च पाद्यं प्रतिगृह्यतामिति ।
इदं च सिद्धं वनजातमुत्तमं त्वदर्थमव्यग्रमिहोपभुज्यताम् ॥ ३५॥

टीका—तदा पाद्यदानोत्तरकाले सौम्यदर्शनं तं सिद्धं पक्वमन्नम् इत्यब्रवीत्। इदं वनजातं वन्यपदार्थजातं त्वदर्थमेव सिद्धं कृतं तदिहोपभुज्यताम्।

वा. रामा. अर० स० ४३

'ब्राह्मणके भेष में आये हुए रावणको सीताजी ने आसन, अर्घ्य, पाद्य दिया और कहा कि जो भोजन तैयार है वह आपही के लिए है, इस लिए आप भोजन कीजिए।'

रावण की उत्पत्ति ब्राह्मण बीज से ही थी और इस समय वह ब्राह्मण के भेष में ही आया था। सीताजी उसे ब्राह्मण ही समझीं और उन्होंने उसे भोजन तथा पानी जो उसके पास तैयार था, दिया। इस कथा से स्पष्ट है कि ब्राह्मण क्षत्रिय के घर भोजन करते थे। क्षत्रियों का बनाया हुआ भोजन ब्राह्मणों के काम का रहता था।

सभी को विदित है कि दुर्वासऋषि पांडवों के घर केवल भोजन के लिए ही अनाहूत पधारे थे। और वे भी असुविधा के समय मध्यरात्रिको। उस समय श्रीकृष्ण जी ने तथा द्रौपदी ने भोजन तैयार कर रखा। यदि दुर्वासऋषि सचमुच भूखे होते तो वे अपने शिष्यों सहित वहीं भोजन करते। परन्तु उनका इस प्रकार असमय आना केवल पांडवों के सत्व हरण के लिए था, अतएव भोजन होने का मौका न आया। तथापि इस कथा में भी प्राचीन समय को वह प्रथा नजर आती है कि क्षत्रियों के घर ब्राह्मण भोजन करते थे। दुर्वासऋषि ने जिस प्रकार क्षत्रियके घर भोजन किया उसी प्रकार वे एक समय व्याध के घर भी भोजन के लिए गये थे।

यवगोधूमशालीनां अन्नं चैव सुसंस्कृतम्।
दीयतां मे क्षुधार्ताय त्वामुद्दिश्याऽऽगताय च ॥ ११ ॥
वराह पुराण. अ. ३८

दुर्वासा ऋषि व्याध के घर जाकर उस से बोले कि 'हे व्याध। यव, गेहूं, चांवल, आदि से उत्तम संस्कार के साथ तैयार किया हुआ भोजन मुझे दो। मैं बहुत भूखा हूं। और यहां भोजन मिलेगा इस आशासे तुम्हारे घर आया हूं। दुर्वासऋषि का यह वचन सुनकर व्याध के पास जो कुछ था वह उसने ऋषि को दिया। इससे प्रसन्न होकर ऋषीने उसे वेद की शिक्षा दी। देखिए—

तमस्थिशेषं व्याधं तु क्षुधादुर्बलतां गतम्।
उवाच वेदाः सांगास्ते सरहस्यपदक्रमाः ॥ ३० ॥
ब्रह्मविद्या पुराणानि प्रत्यक्षाणि भवन्तु ते ॥ –व०पु०अ० ३८

'क्षुधाके कारण दुर्बल हुए उस व्याधको दुर्वासा ऋषिने जो कि तृप्त हो गए थे, रहस्य और अंग सहित वेद सिखाए। उन्होंने कहा तुम्हें ब्रह्म विद्या और पुराण प्रत्यक्ष होवें।'

क्षत्रिय और व्याध का पकाया हुआ भोजन यदि ब्राह्मण भक्षण कर सकते हैं तो यह कह सकते हैं कि वैश्यों का पकाया हुआ भी ब्राह्मण के भोजन के योग्य था। क्यों कि वैश्य भी तो क्षत्रियों के समान ही द्विज हैं। इतिहासों में प्रायः क्षत्रियों के विषय में ही वर्णन है, और उसमें दूसरे वर्णों का वर्णन कथा के संबंध से कहीं कहीं आया है। केवल इतने ही से उस समय की स्थिति का अनुमान करना आवश्यक है। यह करने में कोई हानि नहीं कि उस समय ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्यों में परस्पर रोटी व्यवहार था। निषाद आदि की जो कथाएं ऊपर दी गई हैं उनसे यह कहने के लिए बहुत कुछ प्रमाण मिलता है कि अनार्यों का पकाया हुआ भोजन भी आर्य खाते थे। परन्तु इसका विचार और भी अधिक होना आवश्यक है। आपस्तंब-धर्म सूत्रकारों ने विस्तार से कथन किया है कि भोजन किसके घर का स्वीकार करने योग्य है। उसी को अब देखिए-

क आश्याान्नः॥ २॥
य ईप्सेत् इति कण्वः॥ ३॥
पुण्य इति कौत्सः॥ ४॥
यः कश्चिद् दद्यादिति वार्ष्यायणिः॥५॥
शुद्धा भिक्षा भोक्तव्या एककुणिकौ
काण्वकुत्सौ तथा पुष्करसादिः॥ ७॥
सर्वोपेतं वार्षायणीयम्॥ ८॥
पुण्यस्य ईप्सतो भोक्तव्यम्॥ ९॥
यतः कुतश्च अभ्युद्यतं भोक्तव्यम्॥ १०॥
पुण्यस्याप्यनीप्सतो भोक्तव्यम्॥ ११॥
नाऽनियोगपूर्वमिति हारितः॥ १२॥

आपस्तंब, धर्मसूत्र १।६।१९

(८)' किसके घर का अन्न भक्षण करें ? कण्व ऋषि का मत है कि जो ऐसी इच्छा करेगा उसके घरका अन्न भक्षण करना चाहिए। कौत्स का कथन है कि जो सदाचारी है उसके घर का भक्षण करना चाहिए। वार्ष्यायणी का कथन है कि जो कोई देगा उसी के घर का खाना चाहिए। एक, कुणिक, कण्व, कुत्स तथा पुष्करसादि का मत है कि शुद्ध अन्न भक्षण करना चाहिए। वार्ष्यायणी के अनुसार सभी के घर का लेना चाहिए। सदाचारी तथा देने की इच्छा करनेवाला जो होगा उसके घरका अन्न खाओ (यह मत आपस्तंब-धर्म-सूत्रकार का है।) सदाचारी होने पर जो आदर के साथ न देगा उसके घर का भोजन लेना नहीं चाहिए। हारीत का मत है कि बिना बुलाए भोजन नहीं लेना चाहिए।'

आपस्तंब धर्म सूत्रकारने इस प्रकार भिन्न भिन्न ऋषियों के वचनों का संग्रह किया है। यदि इन सब के मतों का मथित-अर्थ निकालें तो वह यही होगा कि जो सदाचार से रहता हो, जो धार्मिक हो, जो आदर के साथ बुलाता हो उसके घर का भोजन अर्थात् शुद्ध तथा स्वच्छ अन्न लेना चाहिए। उपर्युक्त सूक्त में ऐसा नहीं लिखा है कि किसी एक जातिपर बहिष्कार हो या अछूत के कारण किसी के घरका, कोई कोई व्यवसाय करने वालों के घर का भोजन लेने को मना किया है। परन्तु मालूम पडता है कि उसका कारण उन व्यवसायों के दोष हैं। देखिए—

सर्वेषां शिल्पजीविनाम् ॥ १६ ये च शस्त्रमाजीवन्ती ॥ १९ ॥
भिषक् ॥ २१ ॥ राज्ञां प्रैषकरः ॥ २८ ॥

टीका — अभोज्यान्नः। [आपस्तंब धर्मसूत्र]

" सब प्रकार की कारीगरीका काम करनेवाले, शस्त्रोंसे उपजीविका करनेवाले, वैद्य तथा राजदूत के घरका अन्न खाना नहीं चाहिए।"

शस्त्रों से उपजीविका करनेवाले हिंसा करते हैं इस लिए उनके घरका भोजन लेना मना है। सोचने की बात है कि 'वैद्य के घरका भोजन कोई भी न लो' की आज्ञा वर्तमान समय में कोई भी नहीं मानता। जो हर हमेश धर्मशास्त्र के वचन के अनुसार चलने की डींग मारते हैं। उनके लिए यह भी गुंजाइश नहीं कि वे वैद्यराज के घर भोजन करें। इस प्रकार कारीगरों तथा वैद्यों से भोजन लेने के विषयका निषेध स्मृति ग्रन्थों में भी पाया जाता है। वेदों में इस प्रकार के निषेध नहीं आये। वैद्य और कारीगर लोगों की योग्यता समाज में बहुत बडी है। वैद्यों की आवश्यकता समाज को हर घडी होती है, इसी लिए शास्त्रकारों की आज्ञा को न मानकर सब लोग वैद्य के घर का भोजन लेते हैं। यह निषेध वेदों में नहीं है, वह आधुनिक ग्रन्थों में है। इसी से स्पष्ट है, कि उस निषेध की योग्यता कम हो जाती है। यदि कहें कि शूद्र आदि लोगों को अछूत का दोष था तो वह भी सच नहीं है, क्यों कि आपस्तंब धर्मसूत्रकारने स्पष्ट रूप से कहा है कि द्विजों के घर शूद्र जावें और भोजन पकावें। देखिए—

आर्याः प्रयता वैश्वदेवे अन्नसंस्कर्तारः स्युः ॥ १ ॥
भाषां कासं क्षवथुं इत्यभिमुखो अन्नं वर्जयेत् ॥ २ ॥
केशानंगं वासश्च आलभ्य अप उपस्पृशेत् ॥ ३ ॥
आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्तारः स्युः ॥ ४ ॥
तेषां स एवाचमनकल्पः ॥ ५ ॥
अधिकमहरहः केशश्मश्रुलोमनखवापनम् ॥ ६ ॥
उदकोपस्पर्शनं च सह वाससा ॥ ७ ॥
अपि वा अष्टमीष्वेव पर्वसु वा वपेरन् ॥ ८ ॥
परोक्षमन्नं संस्कृतं अग्नावधिश्रित्य अद्भिः प्रोक्षेत्

तद्देवपवित्रमित्याचक्षते ॥ ९ ॥

आपस्तंब धर्मसूत्र।

टीका- आर्याः त्रैवर्णिकाः। प्रयताः शुद्धाः। वैश्वदेवे गृहमेधिनो भोजनार्थे पाके। गृहमेधिनो यदशनीयस्य इति दर्शनात् ॥ तेषां शूद्राणां अन्नसंस्काराधिकृतानां स एवाचमनकल्पो वेदितव्यः। यस्य गृहे अन्नं पचति। यदि ब्राह्मणस्य हृदयंगमाभिरद्भिः। यदि क्षत्रियस्य कंठगताभिरद्भिः यदि वैश्यस्य तालुगताभिरद्भिः इंद्रियोपस्पर्शनं च भवति ॥ यदि शूद्राः परोक्षमन्नं संस्कुर्युः आर्यैः अनधिष्ठिताः तदा तत्परोक्षमन्नं संस्कृतं आहृतं स्वयमग्नावधिश्रित्य... । तत् देवपवित्रमित्याचक्षते। देवानामपि तत्पवित्रं किं पुनर्मनुष्याणामिति ॥

' ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य इन आर्यों को शुद्ध होकर वैश्वदेव के लिए (अर्थात् गृहस्थ के भोजन के लिए) भोजन पकाना चाहिए, अन्न के सन्मुख मुह करके बोलना नहीं चाहिए, खांसना न चाहिए या थूंकना न चाहिए। बाल, बदन, वा वस्त्र को हाथ लगे तो उसे धो लेना चाहिए। या आर्यों की देखभाल में अनार्य शूद्रों को चाहिए कि वे पाक-सिद्धि करें। वे वैसाही आचमन करें (यदि वे ब्राह्मण के घर रसोई पकाते हों, तो उतने पानीसे जो हृदय तक पहुंचे, क्षत्रिय के घर उतने पानीसे जो कंठ तक पहुंचे, और वैश्य के घर उतने पानीसे जो तालु तक पहुंचे) इसके सिवा वे हर दिन बाल बनवांय तथा नाखून कटवाएं। बदनपर कपडा रहते हुए स्नान करें (नग्न होकर नहीं) या हर अष्टमी को या पर्वकाल के समय बाल बनवाएं। ऐसे शूद्रोंने यदि भोजन आर्यों के परोक्ष पकाया हो तो आर्यों को चाहिए कि वे खुद उसे दुवारा अग्निपर रखकर प्रोक्षण

करें। ऐसा करने से वह भोजन इतना पवित्र होगा, कि वह देवों के भी काम का होगा। तो कहने की आवश्यकता ही कहां कि वह मनुष्यों के काम का होगा?)"

उपर्युक्त सूत्रका भाव है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के घर शूद्र रसोई आदि काम भी करे। पहले कह आये हैं कि परिचर्या शूद्रों का काम है। परिचर्या में पाकसिद्धि का काम शामिल है। ऊपर बताया है कि ब्राह्मण के घर पाक-सिद्धि करने वाले शूद्र को किस प्रकार आचमन करना चाहिए। शूद्रों को चाहिए कि वे हर रोज, आठ दिनमें या और नहीं तो पंधरा दिन में एक वार वाल अवश्यही वनवायं, तथा वे स्नान करने के समय नग्न होकर स्नान न करें। इन नियमों में वतलाया है कि यदि शूद्रों को रसोई वनाने के लिए नौकर रखना है तो वे किन नियमों का पालन करें इन नियमों को ध्यानपूर्वक देखें तो विदित होगा कि इन में स्वच्छता और शुद्धता पर ही अधिक जोर देने का उद्देश है। कोई भी रसोई पकाता हो, वह अन्न की ओर मुह करके न खांसे, न थूंके, शब्दोच्चार न करें, बदन वाल वा कपडे में हाथ लग जावे तो उसे उसी समय धो ले। ये नियम जिस प्रकार उच्च वर्ण के लोगों के लिए हैं उतने ही शूद्रों के लिए भी उपयोगी हैं। दूसरी ध्यान देने योग्य वात यह कि आर्यों के सामने शूद्रोंने भोजन पकाया हो तो वह विना प्रोक्षण किए ही वैश्वदेव तथा भोजन के योग्य है, परन्तु यदि शूद्रोंने आर्यों के सामने न पकाया हो तो उस अन्न को फिरसे अग्नीपर रखकर प्रोक्षण करनेसे वह इतना पवित्र होता है कि उसे देव भी खा सकते हैं। ऊपर के वचन का भाव यह है कि जिस प्रकार आर्योंके अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्योंके संवंधियों ने, कुटुंब के लोगोंने अन्न खुद ही पकाया हो तो वह जितना उपयोगी होता है उतना ही उपयोगी

वह अन्न भी होता है जो शूद्र को नौकर बनाने से वह पकाता है। वर्तमान समयमें ' ब्राह्मण ' शब्द का या ' आचारी' शब्द का '-रसोइया ' अर्थ लोगों में प्रचलित है । प्राचीन समय में यह अर्थ रूढ नहीं था। उस समय दूसरे के घर नौकरी कर के रसोई बनाने का काम शूद्र करते थे। यदि ऐसा कहें कि ' रसोइया' के अर्थ में 'शूद्र' शब्द उस समय चल पडा था तो चल सकता है। सूद, सूपकार, आरालिक, अनुयायी, भृत्य' आदि शब्द परिचर्या करने वालों के सूचक हैं और परिचर्या तो शूद्रों का काम ही था। इससे इन शब्दों से सूचित काम शूद्र ही करते होंगे।

आरालिकाः सूपकारा रागखांडविकास्तथा ।
उपातिष्ठन्ति राजानं धृतराष्टं् यथा पुरा ॥ १९ ॥
--महाभारत आश्रम प० अ० १

सूदा नार्यश्च बहवो नित्यं यौवनशालिनः ॥ २२ ॥
-वा० रामा० उत्तर० स० २१

स चिन्तयन्नघं राज्ञः सूदरूपधरो गृहे ॥ ९१ ॥
-श्रीमद्भागवत९।९

पर्यवेषन् द्विजातींस्तान् शतशोऽथ सहस्रशः।
विविधान्यन्नपानानि पुरुषा येऽनुयायिनः ॥ ४२ ॥
महाभारत, अश्वमें० अ० ८५

अश्वमेध आदि महायज्ञों में अनुयायी, सूद, आरालिक, सूपकार आदि लोग द्विजोंके लिए भोजन पकाने का तथा उन्हें अन्न परसनेका काम करते थे । वे त्रैवर्णिकों के घर नौकरी कर अपनी जीविका चलाते थे। उपर्युक्त सूत्र ग्रन्थों से विदित होता है कि वे लोग शूद्र होंगे। सौदास राजा के यहां एक राक्षस सूद (भोजन पकानेवाला) बनकर रहा

था। उस के रहने का उद्देश यह था कि राजासे अपने भाई का बदला लें जिसे उसने जंगल में मार डाला था। यह कथा (श्रीमद् भागवत अ० ९। ९ में) प्रसिद्ध है। इस से मालूम होता है कि राक्षस जो कि जंगली, अनार्य थे वे भी राजाके घर रसोइया बन जाते थे। उपर्युक्त कथा में राजा के घर राक्षस रह गया सो कपट के कारण रह सका। पर इससे यह तो अवश्य ही मानना होगा कि द्विजों के घर के रसोई बनाने तक सब काम शूद्र करते थे। जहां शूद्र रसोई बनाने का काम कर सकते हैं वहां यह कैसे सम्भव है कि रोटी परसनेका काम तथा पानी देने का काम उनसे न कराया जावे या छूत अछूत का दोष उन्हें लग जावे। शूद्रों के सम्बंध में और भी नियम सुनिए।

अप्रयतोपहृतमन्नं अप्रयतं न तु अभोज्यम् ॥ २१ ॥
अप्रयतेन शूद्रेण उपहृतमभोज्यम् ॥ २२ ॥
दास्या वा नक्तमाहृतम् ॥ ३१ ॥

टीका – स्त्रीलिंगनिर्देशात् दासेन आनीते न दोषः। नक्तमिति वचनाद् दिवा न दोषः ॥ (आपस्तंब धर्मसूत्र)

(९) " अस्वच्छ मनुष्यका लाया हुआ अन्न अस्वच्छ है परन्तु अभोज्य नहीं है। अस्वच्छ शूद्र का लाया हुआ भोजन अभोज्य है। इसी प्रकार दासी (शूद्री) यदि रात्रि के समय भोजन लावे तो वह भी अभोज्य जानो।'

यदि कोई मनुष्य अपने कामपर गया हो तो उस के नौकर को उसके लिए भोजन ले जाने के लिए किन किन बातों पर ध्यान रखना आवश्यक है यहां बतलाया है रात्रिके समय शूद्र स्त्रियां भोजन न ले जावें। यदि शूद्र पुरुष

ले जावें तो चलेगा। रात्रि के समय शूद्री स्त्री द्वारा लाये हुए भोजन के खानेका निषेध नीतिमूलक है। यदि शूद्री स्त्रियों से किसी भी प्रकार के काम के लिए रात्रिके समय भेंट हुई तो युवा पुरुषों से प्रमाद होने की संभावना है। इस लिए रात्रि के समय यदि शूद्री स्त्री भोजन लावे तो उसे स्वीकार करना अनुचित बताया गया है। परन्तु यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि रात्री के समय या दिन के समय यदि शूद्र भोजन लावे तो वह त्याग देने योग्य नहीं है। इसी प्रकार यदि शूद्री दिनको भोजन लावे तो वह त्यागने योग्य नहीं। इसमें यह अवश्य होना चाहिए कि जो शूद्र भोजन ले जावे वह शुद्ध और स्वच्छ होवे। ऊपर के सूत्र का भाव यह कि यदि स्नान करके तथा साफ कपडे पहिनकर यदि कोई शूद्र भोजन ले जावे तो उसे भक्षण करने में किसी भी द्विज को हानि नहीं। कचहरी में काम करनेवालों को वे समय भोजन करना आवश्यक हो जाता है और इससे उनका स्वास्थ्य बिगडता है। यदि वे आपस्तंब धर्म-सूत्र के अनुसार वर्ताव करेंगे और समयपर अपने नौकर द्वारा लाये हुए भोजन का स्वीकार करेंगे तो उन्हें अवश्य लाभ होगा।

इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि जिस समय शूद्रों से भोजन बनवाने की प्रथा थी, उस समय छूत अछूत लोगों के रोम रोममें नहीं समाई होगी। जिस स्थान में यह बताया है कि ब्राह्मण जाति के वैद्य के घरका भोजन नहीं खाना चाहिए उसी स्थान में यह भी बताया गया है कि अस्वच्छ शूद्रका, शस्त्रों द्वारा उपजीविका करने वालों का तथा कारीगरोंका पकाया भोजन नहीं लेना चाहिए। समाज

के लिए जिन कारीगरों की आवश्यकता है उसका अपमान न होना चाहिए, यह स्वतंत्र बात है। पर यहां व्यवसायों के विषय में कथन है, जातियों के विषय में नहीं। वैद्य किसी भी जाति का क्यों न हो उसके घर का भोजन अभक्ष्य ही है। जिस स्थान में यह कहा है कि वैद्य के घर का भोजन अभक्ष्य है, उसी स्थान में यह भी कहा है कि "शूद्रों का पकाया हुआ भोजन ब्राह्मणों और देवताओं के भी कामका होता है।" शूद्र सब में नीच और अनार्य हैं। "ऐसे लोग द्विजों के घर जाकर भोजन पकावें तो वह जब द्विजों के खाने योग्य होता है तो क्षत्रिय तथा वैश्यों द्वारा पकाया भोजन ब्राह्मणों के कामका होने में क्या हानि होगी?

(१०) कहा है कि शूद्रान्न वर्ज्य है। अब हमें देखना चाहिए कि वह शूद्रान्न कौनसा है जो वर्ज्य कहा गया है। दक्षिण हिंदुस्थान में छूत अछूत तीव्रता में पाई जाति है। वहां शूद्रदृष्ट अन्न भी त्याज्य तथा अभक्ष्य होता है। तब शूद्रस्पृष्ट तथा शूद्र-पक्व अन्न की तो बात अलग ही रही। महाराष्ट्र और उत्तर में दृष्टिदोष नहीं माना जाता, स्पर्शदोष माना जाता है। इस स्पर्शदोष को आपस्तंब-धर्म-सूत्रकारों ने जो सीधा जवाब दिया है वह ऊपर बताया ही गया है। आपस्तंब धर्मसूत्रकारों का मत है कि द्विजों के घर जाकर यदि शूद्र भोजन पकावें, तथा शुद्ध होकर स्वच्छता से यदि भोजन तैयार किया हो उसे खाने में द्विजों को कोई हानि नहीं। यदि द्विजों के घर आकर भोजन पकाने के लिए शूद्रों को इजाजत है तो फिर दूसरी जगह शूद्रान्न वर्ज्य कहा है उसका क्या विचार?

अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम्।
वैश्यस्य चान्नमेवान्नं शूद्रान्नं रुधिरं स्मृतम्॥
लघु अत्रिस्मृति अ० ५

" ब्राह्मण का अन्न अमृत है, क्षत्रियों का अन्न दूध है, वैश्योंका अन्न साधारण अन्न है तथा शूद्रोंका अन्न रुधिर है। " लोगों में विदित ही है कि शूद्र मद्यमांस खानेवाला है। उसी के अनुसार पहले सिद्ध कर लिया है कि 'निवृत्तो मद्यमांसयोः।' जिसने मद्यमांस छोड दिया है वह 'सत् - शूद्र' है। यदि इस बात का विचार करें तो मालूम हो जावेगा कि कौनसा शूद्रान्न वर्ज्य है। देखिए—

ब्राह्मणस्य सदा भुंक्ते क्षत्रियस्य च पर्वसु।
वैश्येष्वापत्सु भुंजीत न शूद्रेऽपि कदाचन॥ ५५॥
-आंगीरस स्मृति।

" ब्राह्मणों के घरका भोजन हमेशा खाओ, पर्वकाल में क्षत्रियों के घर का खाओ, वैश्यों के घर का आपत्ति के समय खाओ और शूद्रों के घर कभी भी भोजन नहीं करना चाहिए। " इस स्मृति में जो निषेध है वह शूद्रों के घर जाकर खाने के विषय में है। यह निषेध ब्राह्मण के घर आकर शूद्र के पकाए हुए भोजन के विषय में नहीं है। इसी प्रकार-

नाद्यात् शूद्रस्य विप्रोऽन्नं मोहाद्वा यदि वान्यतः।
स शूद्रयोनिं व्रजति यस्तु भुंक्ते ह्यनापदि॥ १॥
षण्मासान्यो द्विजो भुंक्ते शूद्रस्यान्नं सुविगर्हितम्।
जीवन्नेव भवेच्छूद्रो मृत एवाभिजायते॥ २॥
कूर्म पुराण, अ० १७ उत्तर०

" मोहसे वा दूसरे किसी भी कारण से शूद्रों का अन्न विप्र कदापि न खावे। जो विप्र आपत्ति काल को छोडकर दूसरे समय

वह अन्न खाता है वह शूद्र योनि में जाता है। जो विप्र छः मास तक शूद्रों का निन्दित अन्न खाता है वह जीतेभी शूद्र बन जाता है, मरने पर तो होगा ही। "

इस प्रकार शूद्रान्न के विषयके जितने निषेध हैं, वे सब उस शूद्रान्न के विषय के हैं जो शूद्र के घर जाकर खाया जाता है। जो अन्न शूद्र खुद कष्ट करके प्राप्त करता है और अपने घर पकाता है वह अन्न ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों को न खाना चाहिए। क्यों कि ये तीनों वर्ण समर्थ हैं। उनकी योग्यता ज्ञानसे तथा गुणसे शूद्रों की अपेक्षा अधिक है। सदाचार के कारण इन में एक प्रकार की विशेषता आगई है। इस लिए उन्हे चाहिए कि वे उन अज्ञानी, दुराचारी, मद्यपान करनेवाले, मांसभक्षक तथा अमंगल शूद्रों के घर जाकर भोजन न करें। कारण यह कि जो अन्न शूद्र अपने हाथोंसे अपने घर पकाता है उसमें मद्य-मांस का संबंध आने की सम्भावना है। यही भाव उपर्युक्त तथा तत्सम दूसरे शूद्रान्न—निषेध का है। द्विजों के घर शूद्रोंद्वारा पकाया हुआ भोजन शूद्रान्न नहीं, द्विजान्न ही है। जो अन्न शूद्रों के घर पकाया जाता है और उसमें भी खासकर वह जिसमें मद्य-मांस का संबंध है वही शूद्रान्न है। उसे द्विज न लें। पीछे कह आए हैं कि शूद्र के घर तैयार हुए तैलपक्व तथा गुडमिश्रित पदार्थ, दूध और दूध से बने पदार्थ द्विज ले सकते हैं। इन पदार्थों को छोडकर दूसरे चुरे हुए पदार्थ शूद्रों के घर जाकर द्विज आपत्ति-काल को छोडकर और कभी भी नहीं ले सकते। शास्त्रकारों ने इसी को मनाई की है। यदि आपत्तिकाल को छोड अन्य किसी समय शूद्रों के घर का अन्न सेवन किया जावे तो ऐसे मनुष्य की शुद्धि का उपाय भी शास्त्रकारों ने बता दिया है। ग्यारह प्रकार से शुद्धि हो सकती है। देखिए—

कालोऽग्निः कर्म मृद् वायुः मनोज्ञानं तपो जलम् ।
पश्चात्तापो निराहारः सर्वेऽमी शुद्धिहेतवः ॥ ३१ ॥

याज्ञवल्क्य अ० ३

(११) " काल, अग्नि, सत्कर्म, मृत्तिका, वायु, सुसंस्कृत मन, ज्ञान, तप, (धर्माचरण), उदक, पश्चात्ताप, निराहार ये ग्यारह उपाय शुद्धि प्राप्त करने के लिए हैं ।

इन ग्यारह प्रकारों से शुद्धि हो सकती है । निराहार से शरीर के रोगबीज नष्ट होते हैं और शरीर शुद्ध होता है, मिट्टी और पानीसे शरीरका बाहरी भाग स्वच्छ होता है । (वर्तमान समय में मिट्टी के बदले साबून का उपयोग किया जा सकता है । वायु तथा अग्नि से निवास-स्थान स्वच्छ होता है ।) वायुसे फेफडे शुद्ध होते हैं तथा शरीर नीरोग बनता है । यदि किये काम पर पछतावा हो तो दुबारा कुकर्म होने की सम्भावना नहीं रहती । इसलिए पछतावा एक प्रकारसे शुद्धही कर देता है । मन पर अच्छे अच्छे संस्कार होने से भी मनुष्य बुरे कर्मों से बचता है और शुद्ध होता है, ज्ञान के कारण मनपर अच्छे ही संस्कार होते हैं । तप अथवा धर्माचरण और सत्कर्म से सब प्रकार की शुद्धता हो जाती है। समय बीत जाने पर भी स्वच्छता होती है। जिस स्थान में आज कूराकचरा तथा गंदी चीजें हैं उसी स्थान में निसर्ग की घटना ओं से कुछ समय के पश्चात् स्वच्छता हो जाती है। इस प्रकार शुद्धता और स्वच्छता के प्रकार हैं। इनसे अशुद्ध तथा अछूत लोग भी शुद्ध तथा छूत बनाए जा सकते हैं ।

शुद्धी के ग्यारह प्रकार ऊपर बताए हैं । इन्हीं से अशुद्धता के मार्ग भी समझ लिए जा सकते हैं। अकाल, प्रकाश का अभाव, कुकर्म, वायुका अभाव, मन की असंस्कृतता, अज्ञान, अधर्म, उदक का अभाव, मिट्टी का अभाव, किये काम का पछतावा

न होना, अजीर्ण, आदि कारणों से अस्वच्छता होती है। पानी तथा मिट्टी के अभाव के कारण मारवाड देश में अस्वच्छता हुई। प्रकाश तथा वायु के अभाव से मकान में अस्वच्छता हो जाती है। अज्ञान तथा अधर्म क कारण हीन जातियों में अस्वच्छता फैल गई है। यदि उन्हे ज्ञान का दान किया जावे, उनका मन सु-संस्कृत किया जावे, तथा उन्हें धार्मिक बनाया जावें, उनके मकान आदि सुधारे जावें और उनकी रहन-सहन स्वच्छताकी बना दी जावें तो उन में उत्पन्न हुए दोष आपही से नष्ट हो जावेंगे।

यहां तक जो विचार हुआ उससे स्पष्टतया विदित होगा कि शूद्र के घर जाकर भोजन करने का निषेध आपत्तिकाल को छोड़कर अन्य समय के लिए किया गया है। कहना आवश्यक हो जाता है कि उनके घरके कुछ पदार्थ लिए जा सकते हैं। हां, बुरे पदार्थ नहीं ले सकते। तब भी यदि वे ब्राह्मणादि के घर आकर रसोई पकावें तो उस भोजन का स्वीकार करने में कोई हानि नहीं। लोगों की दृष्टि में उनमें जितनी अछूत समझी जाती है वास्तव में उनमें उतनी अछूत नहीं है। यह बात स्पष्ट है कि जो दोष उनके खान पान के कारण उत्पन्न हुआ है वह आचरण सुधारने से निकल सकता है। प्रसंग के अनुसार यहांपर हम यह भी बता देना आवश्यक समझते हैं कि अनार्य लोग सुधर कर आर्य कैसे बने।

अन्तर्धिने वा शूद्राय ॥४१॥ आपस्तंब धर्म सू० अ० १। १४

इस धर्मसूत्र में बताया है कि गुरु के गृह में रहने वाले शूद्रका शूद्रत्व अन्तर्हित अर्थात् लुप्त हो जाता है। गुरुगृहमें निवास न करने वालेका शूद्रत्व जिस प्रकार प्रगट रहता है वैसा इसका प्रकट नहीं, गुरुगृह में निवास करने ही से वह अन्तर्धान हो जाता है। इस से कुछ मसाला हमारे लिए मिलता है। यद्यपि स्पष्टतया नहीं है, तब भी

अस्पष्ट रीति से भी इस सूत्र से एक बडे तत्त्व का प्रकाश होता है। अर्थात् अध्यापक, आचार्य, गुरु आदि के घर रहने से शूद्रों का शूद्रत्व जाता रहता है। इसका स्पष्टीकरण सहज ही में हो सकता है। इन लोगों के घर शास्त्र की बातें सर्वकाल होती रहती हैं। इस बात को केवल सुनने ही से शास्त्रों का ज्ञान स्त्रियों को हो जाता है। यह बात अनुभव से सिद्ध हुई है। यही हाल शूद्रों का है जो आचार्य के घर रहते हैं। इस शूद्र का दर्जा सहज ही श्रवण किए हुए ज्ञान के कारण बढ जाता है। इस ज्ञानके श्रवण करने ही से उसे विदित होता है कि हम अज्ञानी हैं। यह अज्ञान ही उस में लज्जा उत्पन्न करता है। इसी लिए उस मनुष्य के लिए शूद्र शब्द का उपयोग अर्थसहित लागू होता है। (शुचा शोकेन द्रवति।) हम अज्ञानि हैं इस बात को जान लेने के कारण जो शोक होता है उस शोक के कारण जो इधर उधर भागता है, दूर रहता है, वही शूद्र है। अर्थात् ज्ञान क्या है और अज्ञान क्या है इस बात को न जानने वाले दस्यू की अपेक्षा यह मनुष्य उच्च है। इसी प्रकार केवल बतलाया हुआ काम करने वाले बुद्धिहीन दस्यू से यह श्रेष्ठ है। इस प्रकार का शूद्र उस समय गुरु के समान समझा जाता है जब गुरुको अशौच हो। उपर्युक्त सूत्र के भाष्य में यही बात बताई गई है। तब देखिए केवल इतनी ही समझ के कारण, कि हम अज्ञानी हैं, हमें ज्ञान होता है और हमारा दर्जा बढ जाता है।

चोर, लुटेरे, मांसभक्षक, आदि जंगली लोग ही दस्यू हैं। वे ही नौकरी करके शांतता से रहने पर दास बनते हैं। जब उन्हे अपने अज्ञान से घृणा उत्पन्न होती है और यह मालूम होने लगता है कि अच्छा तब होता जब हमें ज्ञान मिलता, तब वे शूद्र बन जाते हैं। मद्यमांस छोडकर सदाचार से रहने पर वे ही सत्शूद्र बनते हैं। सत्

शूद्र बनने से उन्हें उपनयन का अधिकार प्राप्त होता है। उपनयन हो जाने से वे द्विज बनते हैं। बस इसी प्रकार अनार्य से आर्य बन सकते हैं। आर्य भी उपर्युक्त नीच कर्मों से अनार्य तथा दस्यु बन जाते हैं। तात्पर्य यह कि सदाचार से, अच्छी रहन सहन से शूद्र छूत एवं व्यवहार के योग्य बन जाते हैं। यहां यह फिरसे और अलग से बताने की आवश्यकता नहीं कि शूद्रों में सब प्रकार के आनार्य शामिल हैं।

प्रथम भाग समाप्त।

द्वितीय भाग भी पढ़कर देखिये।
उसमें अछूत निवारण के मार्ग बताये हैं।

विषय सूची ।

प्रास्ताविक	१
विषयोपन्यास	३
जन्म, परिस्थिति, शुद्धता, संस्कार	७
रूढी	११
वेदबाह्य स्मृति और आचार	[illegible]
उत्पत्ति परिवर्तन और स्वरूप	१९
यज्ञयुग, ब्रह्मयुग, योगयुग, पठणयुग, विज्ञानयुग	२३
विषमताकी वृद्धिके कारण	३६
चार वर्णोंकी कल्पना	४१
वेद मंत्रोंका उपदेश	४९
वेदमें बताये उद्योग धंदे	६४
शूद्र कौन है ?	६९
शूद्र के कर्म	७१
द्विजको शूद्रत्व की प्राप्ति	७२
सत् शूद्रके लक्षण	८०
शूद्रके पर्याय शब्द	८३
गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था	८९
मनुष्य समाज (चित्रपट)	९०
जातिभेद कृत्रिम है	९२
गुण कर्मोंसे चारवर्ण	९५
आचार ही ब्राह्मण का लक्षण	९९
तपसे ब्राह्मणत्व	११३
अंगराजाके कुलमें क्षत्रिय, भील तथा म्लेच्छ	११८
मनुराजाके वंश में चारों वर्ण	११९
कश्यपके वंशमें अनेक वर्ण	१२०

रन्तिदेवके वंशमें ब्राह्मण और क्षत्रिय	१२१
शूद्रसे ब्राह्मण और ब्राह्मणसे शूद्र	१२५
शूद्रोंकी अछूत	१२८
श्रम मर्यादा	१३०
पंच महापातक	१३१
शूद्रोंको नमन	१३२
किसका अन्न खायं	१३८
ब्राह्मण का क्षत्रिय कन्यासे विवाह	१४८
व्रात्यस्तोमसे पतितोद्धार	१५३
शूद्रोंका ब्रह्मचर्य	१५३
कवष ऐलूष की कथा	१५६
जाबाल:का उपनयन	१५७
गुहका आतिथ्य	१६०
किसका अन्न खाया जाय	१६४
किसका अन्न न खाया जाय	१६५
शूद्र द्विजोंके घर रसोई पकावें	१६६
अभोज्य अन्न कौनसा है	१७०
शुद्धिकरनेके ग्यारह साधन	१७५
शूद्रका शूद्रत्व कैसे लुप्त होता है	१७६

प्रथम भाग समाप्त।

" केन " उपनिषद् ।

इस पुस्तकमें निम्न लिखित विषयोंका विचार हुआ है—

१ केन उपनिषद् का मनन,
२ उपनिषद् ज्ञान का महत्त्व,
३ उपनिषद् का अर्थ,
४ सांप्रदायिक झगडे,
५ " केन " शब्द का महत्त्व,
६ वेदान्त,
७ उपनिषदोंमें ज्ञान का विकास,
८ अग्नि शब्दका भाव,
९ उपनिषद् के अंग,
१० शांतिमंत्रोंका विचार,
११ तीनों शांति मंत्रों में तत्त्व ज्ञान,
१२ तीन शांतियोंका भाव,
१३ ईश और केन उपनिषद्,
१४ " यक्ष " कौन है ?,
१५ हैमवती उमा,
१६ पार्वती कौन है?
१७ पर्वत, पार्वती, रुद्र, सप्त ऋषि और अरुंधती'
१८ इंद्र कौन है?
१९ उपनिषद् का अर्थ और व्याख्या.
२० अथर्ववेदीय केन सूक्तका अर्थ और व्याख्या.
२१ व्यष्टि, समष्टि और परमेष्ठी,
२२ त्रिलोकी,
२३ अथर्वाका सिर,
२४ ब्रह्मज्ञानी की आयुष्य मर्यादा.
२५ ब्रह्म नगरी, अयोध्या आठचक्र,
२६ आत्मवान् यक्ष,
२७ अपराजिता पुरीमें ब्रह्मका प्रवेश.
२८ देवी भागवतमें देवी की कथा,
२९ वेदका वागांभृणी सूक्त, इंद्र सूक्त, वैकुंठ सूक्त, आत्म सूक्त,
३० शाक्तमत, शैव और वैष्णवोंकी एकता.
३१ वैदिक ज्ञान की श्रेष्ठता ।

इतने विषय इस पुस्तक में आगये हैं, इस लिये उपनिषदों का विचार करने वालों के लिये यह पुस्तक अवश्य पढने योग्य है।

मूल्य १।) रु. डाकव्यय =) है

मंत्री— स्वाध्याय मंडल. औंध (जि. सातारा).

महाभारत।

(भाषा-भाष्य-समेत)

तैय्यार हैं।

(१) आदिपर्व । पृष्ठ संख्या १२५ मूल्य म. आ. से ६) रु. और वी. पी. से ७) रु.

(२) सभापर्व । पृष्ठ संख्या ३५६ मूल्य म. आ. से २) और वी. पी. से २॥) रु.

(३) वनपर्व । पृष्ठ संख्या १५३८ मूल्य ८) रु. और वी. पी. से ९) रु.

(४) विराटपर्व । पृष्ठसंख्या ३०६ मू. म. आ. से १॥) और वी. पी. से २) रु.

(५) महाभारत समालोचना।

१ प्रथम भाग मू. ॥) वी. पी. से ॥।=) आने। २ द्वितीय भाग मू. ॥) वी. पी. से ॥।=) आने।

महाभारतके ग्राहकोंके लिये १२०० पृष्ठोंका ६) रु. मूल्य होगा।

मंत्री- स्वाध्याय मंडल, औंध. (जि. सातारा)

मुद्रक तथा प्रकाशक— श्री. दा. सातवळेकर, भारत मुद्रणालय स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)